

वर्ष ४१] * * * [अङ्क १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०२४, अक्टूबर १९६७

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५० विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

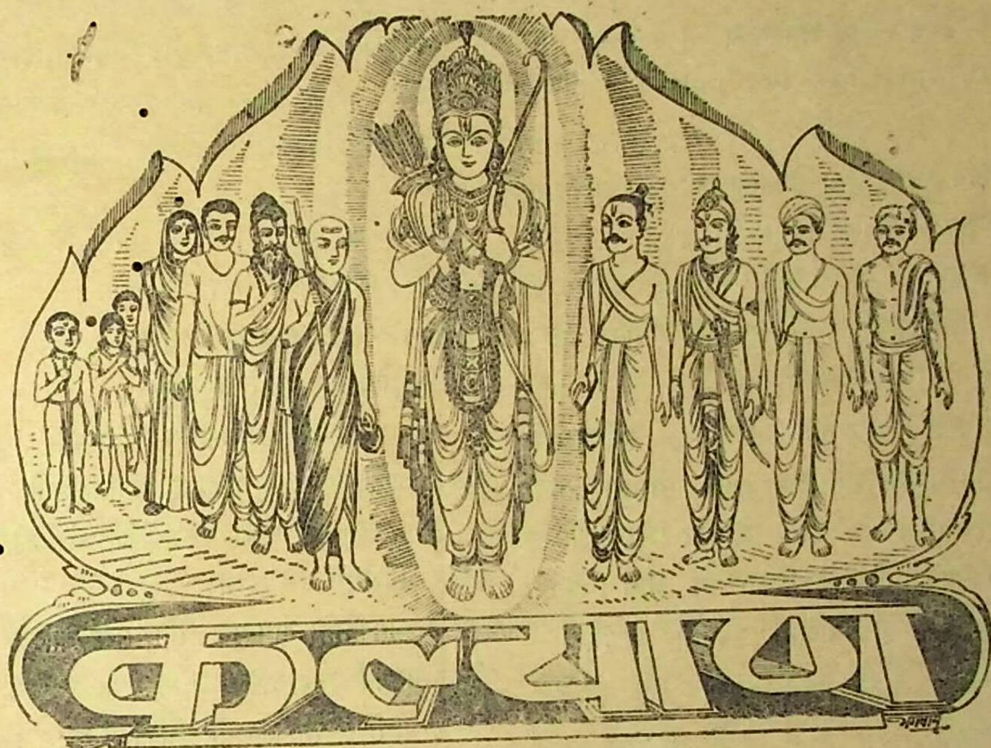
सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर



शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर कार्तिक २०२४, अक्टूबर १९६७ | संख्या १० पूर्ण संख्या ४९१

शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण

मधुर सु-सेवासे प्रसन्न हो शबरीसे बोले श्रीराम ।
भद्रे ! शुचि शुश्रूषा की, अब जाओ निज अभीष्ट हरि-धाम ॥
आज्ञा पा, शबरीने जलते पावकमें शुभ किया प्रवेश ।
दिव्य अग्नि-सम देह प्राप्तकर तेजस्वी-धर पावन वेश ॥
वसन, हार, आभूषण, अनुलेपन सब दिव्य परम तन धार ।
विद्युत्-द्युति दमकाती पहुँची दिव्य धाम, तमके उस पार ॥

याद रक्खो—मनुष्यजीवनकी चरम तथा परम सफलतारूप भगवत्प्राप्तिके लिये प्रमुख साधनोंमें एक श्रेष्ठ साधन है—भगवत्प्राप्त पुरुषका, संतका सङ्ग, उसका सेवन। सङ्ग तथा सेवनका अर्थ 'साथ रहना' और 'शारीरिक सेवा' करना भी होता है। परंतु भावरहित हृदयसे केवल साथ रहने अथवा किन्हीं सांसारिक मनोरथोंको मनमें रखकर शारीरिक सेवा करनेसे बहुत ही कम लाभ होता है।

याद रक्खो—सङ्ग वही है जिसमें उन संत पुरुषके विचारों, भावों, उपदेशों तथा उनके द्वारा प्राप्त तत्त्व-विचारोंका नित्य मनन होता रहे और 'सेवन' वह है जिसमें इन सबका जीवनमें विकास हो जाय। इसीके लिये सदा सावधान तथा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

याद रक्खो—संतका सङ्ग या सेवन यदि लौकिक कामनाको लेकर किया जाता है तो वह ऐसा ही है जैसा अमूल्य रत्न हीराको छोड़कर काँचकी कामना करना। यही नहीं, वस्तुतः सांसारिक भोग निश्चित दुःखपरिणामी और आत्माका पतन करनेवाले हैं—इसलिये भोगकामनाकी पूर्तिके लिये संतका सङ्ग तथा सेवन तो पवित्र अमृतके बदले हलाहल विष माँगनेके समान है। यद्यपि संतसे विष मिलता नहीं; क्योंकि उनमें विष है ही नहीं, तथापि लौकिक भोग-कामी साधक परम परमार्थ-धनसे तो दीर्घकालतक वञ्चित रह ही जाता है। अतएव संतका सङ्ग और सेवन केवल भगवत्प्राप्तिके लिये अथवा उस संतकी संतुष्टिके लिये ही करो।

याद रक्खो—संतका सङ्ग तथा सेवन यदि भगवत्प्राप्तिके शुद्धभावसे होगा तो निश्चय ही—साधककी स्थिति तथा साधनकी गतिके अनुसार—उसको परमार्थ-पथपर प्रगतिके अनुभव होने लगेंगे और वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ता चला जायगा। प्रगतिके वे लक्षण ये हैं—

१—काम, क्रोध, लोभ, मद, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, हिंसा, विषाद, शोक, भय, पर-अहितमें रुचि, व्यर्थ-चिन्तन, विषय-चिन्तन, व्यर्थभाषण, कटुभाषण आदिका न रहना।

२—मनमें विकार उत्पन्न करनेवाले शारीरिक, मानसिक, साहित्यिक—कुसंगका त्याग।

३—जगत्के विषयोंकी विस्मृति।

४—भोगोंमें वैराग्य तथा उपरति।

५—जागतिक लाभ-हानि तथा अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सुख-दुःख न होना, समान स्थिति रहना।

६—बुद्धि, मन तथा इन्द्रियोंका भोगोंकी ओरसे हटकर भगवान्में लगे रहना।

७—भगवान्के नाम-गुण-लीला, तत्त्व आदिके श्रवण-कीर्तन-स्मरणमें मधुर रुचि।

८—दैवी सम्पत्तिके सभी लक्षणोंका सहज विकास।

९—संतके तथा भगवान्के अनुकूल आचरण।

१०—अपने इष्ट भगवान्का नित्य मधुर स्मरण।

११—स्वाभाविक ही 'सर्वभूतहित' की भावना तथा शास्त्रविहित कर्मोंमें प्रवृत्ति।

याद रक्खो—उपर्युक्त लक्षण जीवनमें प्रकट होने लगें तो समझो कि वास्तवमें ही संतका सङ्ग तथा संतका सेवन हो रहा है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाशका होना अनिवार्य तथा स्वयं-सिद्ध प्रत्यक्ष है। वैसे ही संतके सङ्ग तथा सेवनसे उपर्युक्त भावों तथा गुणोंका प्रकाश अनिवार्य स्वयंसिद्ध तथा प्रत्यक्ष होता है।

याद रक्खो—संतका सङ्ग और संतका सेवन करनेपर भी यदि उपर्युक्त लक्षणोंका उदय न होकर उसके विपरीत आसुरी सम्पत्तिका विकास तथा विस्तार, भोगोंमें तथा पापोंमें रुचि, शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें राग, पर-अहितमें प्रसन्नता, विषयचिन्तन आदि होते हैं तो

समझना चाहिये कि या तो जिनको संत माना गया है वे संत नहीं हैं, अथवा उनका सङ्ग और सेवन न करके उनके नामपर विषय-सङ्ग तथा विषय-सेवन ही किया जा रहा है। भगवत्प्राप्तिका उद्देश्य ही नहीं है।

'शिव'



वर्णाश्रमधर्मका उल्लङ्घन कर तथा शास्त्रीय आचरणोंको त्यागकर मौखिक ब्रह्मज्ञानी बन बैठना अधःपतनका हेतु है

परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश

[प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा]

[भारतके स्वनामधन्य पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्त-श्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके ये महत्त्वपूर्ण सदुपदेश दिल्लीमें आपके श्रीचरणोंमें बैठकर लिखे गये हैं जो नीचे दिये जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे और इसमें जो भी भूल रह गयी हो, वह सब मेरी ही समझेंगे, [पूज्यपाद श्रीआचार्यचरणकी नहीं।]

१—अपना उत्थान चाहते हो तो फैशन-परस्तीसे दूर रहो

प्रश्न—पूज्य महाराजजी ! हमारा और हमारे देशका उत्थान कैसे हो ?

उत्तर—अपना, अपनी जातिका और अपने देशका उत्थान करना चाहते हो तो आजकी इस विदेशी फैशनसे बचो और शास्त्रानुसार तथा सनातनधर्मानुसार अपना जीवन बनाओ एवं अपनी प्राचीन भारतीय हिंदू सभ्यता-संस्कृतिको अपनाओ, तभी उत्थान होगा, अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं होगा। आज लोग इस व्यर्थके फैशनके नामपर कैसे-कैसे घोर पाप कर रहे हैं और अपना लोक-परलोक बिगाड़ रहे हैं, यह सुनकर रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। आज लोग जो पाश्चात्य फैशनके वशीभूत होकर अपने पैरोंमें बढ़िया-बढ़िया मुलायम चमड़ेके जूते पहनते हैं, बढ़िया चमड़ेके बेग हाथमें लेकर चलते हैं, अपनी घड़ीमें भी बढ़िया चमड़ेका चैन धारण करते हैं, अपने गलेमें तथा अपनी कमरमें चमड़ेकी पेटियाँ लगाते हैं, बढ़िया चमड़ेका विस्तरबन्द लेकर घूमते हैं और टोपीमें भी चमड़ेका प्रयोग करते हैं। पता है आपको कि यह बढ़िया बताया जानेवाला चमड़ा कैसे-कैसे घोर पापके द्वारा और कैसे-कैसे घोर अत्याचार करनेपर प्राप्त किया जाता है, जिसे अपने प्रयोगमें लाकर लोग घोर नरकमें जानेकी तैयारी कर रहे हैं ? यह बढ़िया बताया जानेवाला चमड़ा प्राप्त होता है तब जब कि आपकी पूज्या गोमाताओंको उन्हें पहले तो कई-कई दिनोंतक भूखा-प्यासा रक्खा जाता है और फिर पाँच-सात दिनके पश्चात् उन्हें लाकर एक लाइनमें बराबर-बराबर बाँध दिया जाता है। फिर उन्हें खूब पानी पिलाया जाता है जिससे उन गायोंका पेट फूल जाता है, फिर उनके ऊपर तड़ातड़ कोड़ोंकी और हंटरोंकी मार दी जाती है, जिससे उनका सब खून चमड़ेमें आ जाता है। फिर उनके ऊपर गरम-गरम खौलता हुआ पानी डाला जाता है। फिर उनके चमड़ेको उधेड़ लिया जाता है और उनका गोमांस काट-काटकर डिब्बोंमें भर-भरकर विदेशोंको भेज दिया

जाता है और ऐसे घोर पापकी निकृष्ट कमाईसे डालर कमाये जाते हैं। इस प्रकार आपकी पूज्या गायोंको घोर कष्टोंपर कष्ट दे-देकर जो मुलायम चमड़ा प्राप्त किया जाता है, उसी चमड़ेसे बनायी गयी बढ़िया-बढ़िया चप्पलें, जूते पहन-पहनकर आज हिंदू प्रसन्न होते हैं। क्या यह हिंदुओंके लिये घोर लज्जाकी बात नहीं है ? आप अपनी पूज्या गोमाताओंके ऊपर घोर जुल्म ढहाकर प्राप्त किये गये चमड़ेके जूते पहनकर और हाथमें बेग लेकर चमड़ेकी अटैची लेकर घूमते हैं। आपको तनिक-सी लज्जा नहीं आती ? क्या यह आपके लिये डूब मरनेकी बात नहीं है ? जहाँ हिंदू अपनी पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये सहज ही अपने प्राणतक दे डालते थे और गोमाताकी ओर पैर करके बैठनेमें भी घोर पाप मानते थे, वहाँ आज वे अपनी गोमाताकी खालें खींच-खींचकर उनकी चमड़ीको उधेड़कर उस चमड़ेसे बने जूते-चप्पलें पहनकर घूम रहे हैं। इससे बढ़कर घोर अधःपतन और क्या होगा ?

२—अपने देशकी बनी वस्तुओंको प्रयोगमें लाकर धन, धर्म और शरीरकी रक्षा करो

हिंदुओ! आप आज पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगकर और फैशनके वशीभूत होकर अपनी प्राचीन भारतीय सभी चीजोंसे घृणा करने लगे हो, यह आपके लिये उत्थानका मार्ग नहीं, अपितु पतनका मार्ग है, एवं कदापि उचित नहीं है। अपने देशकी वस्तुओंसे घृणा कर, पाश्चात्त्योंकी नकल कर आप अपना धन-धर्म और स्वास्थ्य-शरीर सब कुछ नष्ट कर रहे हैं और अपने हाथों अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ रहे हैं। आज आप भारतीय हिंदू होकर और ऋषियोंकी संतान होकर भी प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम श्रीभगवत्-स्मरण नहीं करते। आज तुम खाटमें पड़े-पड़े बिना मुँह-हाथ धोये सबसे पहले चाय-चुड़ैलका स्मरण करते हो और सबकी जूँठी चायकी प्यालियाँ पीते हो तथा अण्डेसे बनाये गये बिस्कुट खाते हो। फिर अपने दाँतोंमें टूथ-पाउडर लगाकर सूअरके बालोंसे बने ब्रुशको अपने मुखमें घुसेड़कर उस गंदे ब्रुशसे दाँत साफ करते हो। अंग्रेजी टूथ-पाउडरमें न जाने क्या-क्या अशुद्ध चीजें पड़ती हैं। प्रातःकालके शुभ समयमें ऐसी-ऐसी गंदी अशुद्ध अपवित्र चीजोंके दर्शन करते हो और उनको शरीरके स्पर्श कराते हो और मुखमें ले जाते हो, यह पतनका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो क्या है ? इस अंग्रेजी टूथ-पाउडर और सूअरके बालोंसे बने ब्रुशसे वास्तवमें तुम्हारे दाँत साफ भी नहीं होते। इस टूथ-पाउडरसे दाँत साफ करनेसे जहाँ आपका धन और धर्म—दोनों चले जाते हैं, वहाँ आपके दाँत भी कुछ ही दिनों बाद शिथिल होकर गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है। इसके विपरीत यदि आप अपने देशकी शुद्ध पवित्र नीमकी, कीकरकी दाँतुन तोड़कर लाते और दाँतुन तोड़ते समयका मन्त्र भी बोलते तो उससे आपको अनायास भगवान्‌के स्मरण करनेका भी परम सौभाग्य प्राप्त हो जाता और साथ ही नीमकी, कीकरकी ताजी दाँतुन करनेसे आपके दाँत भी साफ हो जाते और बड़े मजबूत बन जाते। इसमें आपका पैसा भी खर्च नहीं होता और आपका धर्म भी बच जाता। इस प्रकार आपके धन, धर्म, शरीर, स्वास्थ्य आदि सबकी रक्षा हो जाती। पर आज तो आप अपने धन, धर्म और शरीर आदि सबको नष्ट करनेमें ही फैशन समझ रहे हैं और गर्व-गौरवका अनुभव कर रहे हैं, पर इन बातोंसे आपका पतन ही होगा, उत्थान नहीं।

३—कर्मकाण्ड और भक्तिकी अवहेलना कर ब्रह्मज्ञानी बन जाना अधःपतनका हेतु है

[एक अपनेको ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती माननेवाले

सज्जनने आकर पूज्य श्रीश्रीआचार्यचरणसे बड़े ही महत्त्व-पूर्ण प्रश्नोत्तर किये जो इस प्रकार हैं—]

वेदान्ती—महाराजजी ! हम आपको अपने एक उत्सवके जुलूसमें ले जाना चाहते हैं और उसमें आपकी सवारी निकालनी है, क्या आप कृपा करेंगे ?'

पूज्य जगद्गुरुजी—'आप हमें अपने यहाँ ले जानेसे पहले यह बतायें कि आपके विचार कैसे हैं ? आपके विचार कट्टर सनातनधर्मी हैं और शास्त्रानुसार हैं या आपके विचार ढुलमुलपंथी—मनमानी हैं ? आजकल जुलूसोंमें स्त्री-शूद्र, मुसलमान-ईसाई आदि सबको सम्मिलित कर सबसे वेदमन्त्र बुलवाये जाते हैं। यज्ञोंमें भी सभी आहुति डालने लगे हैं और वेदमन्त्र बोलने लगे हैं। हम इन सब बातोंको शास्त्रविरुद्ध बात मानते हैं।

'नहीं महाराज ! मैं तो कट्टर धार्मिक विचारोंका हूँ और मैं परमहंस साधुओंका शिष्य हूँ और बड़े-बड़े महात्माओंके पास जाता हूँ।'

'आजकल बहुत-से महात्मा कहानेवाले लोग भी मनमानी शास्त्रविरुद्ध बातें करने लगे हैं।'

'नहीं महाराज ! मैं तो सोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, शिवोऽहम्वाला वेदान्ती हूँ।'

'फिर तो आप वास्तवमें बड़े खतरनाक हैं और शास्त्रविरुद्ध कार्य करनेवाले हैं !'

वेदान्ती—'कैसे महाराज ?'

पूज्य जगद्गुरुजी—'आप क्या करते हैं ?'

वेदान्ती—'मैं एक दफ्तरमें नौकरी करता हूँ और अफसर हूँ। साथ ही वेदान्ती भी हूँ।'

'तब तो आप बड़े विचित्र ब्रह्मज्ञानी और विचित्र वेदान्ती हैं। एक ओर तो आप इस समय कोट-बूट-नकटाई पहने पूरे साहब बहादुर बने हुए हैं और दूसरी ओर अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि कहकर अपनेको ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती भी मान रहे हैं क्या यह उचित है ?'

'महाराज ! वेश-भूषासे क्या होता है ?'

'यदि वास्तवमें आप कोट-बूट-नकटाई धारण करनेवाले अंग्रेजी पढ़े बाबू लोग खाली अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि आदि जबानसे कहकर ही वेदान्त और ब्रह्मज्ञानके अधिकारी बन गये और ब्रह्मज्ञानी हो गये तो फिर बड़े-बड़े पूज्य ऋषि-महर्षि, जो जीवनभर संध्या-वन्दन, कर्मकाण्ड, भजन-पूजन, घोर त्याग-तपस्या करते रहे, घोर जंगलोंमें रहते रहे, महान् संयम-नियममय जीवन व्यतीत करते रहे, कन्द-मूल, फल-फूल खाते रहे तथा वायु-भक्षण करते रहे, अपने शरीरोंको सुखा डाला और हजारों-लाखों वर्षकी समाधियाँ लगा दीं, क्या उन्हें आप-जैसी इतनी भी बुद्धि नहीं थी कि जो बिना त्याग-तपस्या किये और बिना योगसाधन किये आपकी ही भाँति 'अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि' आदि कहकर और दो-चार किताबें पढ़-पढ़ाकर बिना ही आचरण तथा साधनके वे भी अपनेको पूरा ब्रह्मज्ञानी और पूरा वेदान्ती मान लेते ? उन्हें क्या आवश्यकता थी कि जो इतने बड़े-बड़े घोर कष्ट उठाते और व्यर्थ ही जंगलोंमें रहकर शरीर सुखाते ? वे भी आप बाबुओंकी तरह कोठियोंमें रहकर मौज मारते ?'

'नहीं महाराज ! मैंने तो बहुत-से वेदान्तके बड़े-बड़े ग्रन्थ—पञ्चदशी, विचारसागर, विवेकचूडामणि आदि देखे हैं और मैंने वेदान्ती साधु-महात्माओंका खूब सत्सङ्ग किया है।'

'आपने खूब ग्रन्थ देखे हैं और खूब साधु-संतोंका सत्सङ्ग किया है और आप अपनेको पूरे वेदान्ती और ब्रह्मज्ञानी भी मानते हैं, पर इतनेपर भी आपके सिरपर चोटी, माथेपर तिलक और गलेमें यज्ञोपवीत क्यों नहीं है ? आप खड़े-खड़े मूत्र त्याग करते हैं और मूत्रके छींटे

आपकी पतलूनपर पड़ते रहते हैं, जिससे आपका पतलून भी मूत्रमें भीग जाता है। आप इस बातकी कोई परवा नहीं करते, इसीसे तो आप अद्भुत वेदान्ती, अद्भुत ब्रह्मज्ञानी हैं। आज आप अपने सिरपर उस पवित्र चोटीके चार बाल भी नहीं रख सकते कि जिस चोटीके लिये साक्षात् ब्रह्म श्रीकृष्ण श्रीमैया यशोदासे गिड़गिड़ाकर यह याचना करता था—

'मैया मोरी कबहुँ बढ़ेगी चोटी'

जिस चोटीकी रक्षाके लिये श्रीगुरुगोविन्दसिंहके बच्चे हँसते-हँसते जीवित दीवारोंमें चुने गये, वीर हकीकत बलिदान हो गये, बन्दा वीर वैरागीका बोटी-बोटी मांस नोचा गया और लाखों क्षत्रियोंने प्राण दे डाले। फिर आप कैसे ब्रह्मज्ञानी हैं ? हमारा शास्त्र डंकेकी चोट घोषणा करके कहता है कि जिसके सिरपर चोटी नहीं है उसके सब कार्य निष्फल हैं—

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत् कृतम्॥

द्विजमात्रको अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको सदा यज्ञोपवीतधारी होना चाहिये और मानवमात्रको हर समय शिखामें गाँठ बाँधकर रहना चाहिये, बिना शिखा और बिना यज्ञोपवीत जो भी धर्मकार्य किया जायगा, वह सब निष्फल होगा। आप अपनी धोती भी नहीं पहन सकते तथा अपनी भारतीय हिंदू वेश-भूषाको भी नहीं अपना सकते तो आप कैसे वेदान्ती हैं ?'

'महाराजजी! हमें दफ्तरमें जाना पड़ता है इसलिये हमें पैन्ट पहननी पड़ती है।'

'क्या आप अपनी भारतीय पोशाक पहनकर दफ्तर नहीं जा सकते ? क्या आपको अपनी भारतीय वेश-भूषामें जानेपर दफ्तरमें घुसनेसे कोई रोकता है ? यदि आप धोती पहनकर दफ्तरमें जायँ तो क्या आपको कोई मना करता है कि आप धोती पहनकर दफ्तरमें क्यों आये हो ? क्या धोती पहननेपर कोई पाबंदी लगी हुई है ?'

'महाराजजी ! धोती-कुरता पहननेपर हमारा कोई मान नहीं करता। धोती पहननेपर सब लोग हमारी दिल्लगी उड़ाते हैं, इसलिये हम धोती पहनकर दफ्तर नहीं जाते।'

'जब धोती-कुरता पहनकर आपके भारतदेशका प्रधान मन्त्री लालबहादुरशास्त्री रूस, इंग्लैंड आदि विदेशोंमें जाकर बड़ा मान-सम्मान प्राप्त कर सकता है तो फिर आपका धोती-कुरता पहनकर अपने देश भारतके दफ्तरमें जाकर धोती-कुरता पहननेके कारण मान-सम्मान नहीं रह सकता, यह तो बड़ा आश्चर्य है। जिस प्रकार आप अपने देशकी भारतीय वेश-भूषासे घृणाकर गोरे अंग्रेजोंकी नकल कर कोट-पतलून, नकटाई-बूट डाटकर काले अंग्रेज बनते चले जा रहे हैं, क्या आपने इस प्रकार किसी अंग्रेजको भी अपने देशकी पोशाक—कोट-बूट-टोप-नकटाई आदि छोड़कर इनकी जगह भारतकी धोती-कुरता पहनते देखा है ? जब वे अंग्रेज अपने देशकी पोशाक पहनना नहीं छोड़ते और अपने देशमें रहनेपर और विदेशोंमें जानेपर सब जगह ही अपनी पोशाकमें जाते हैं तथा अपने अंग्रेजी ढंगसे रहते हैं तो फिर आपको ही अपने देशकी पोशाकसे घृणा करनेकी क्या आवश्यकता पड़ी है ? आप अपनी पोशाक छोड़कर जो यह अंग्रेजोंकी पोशाक—कोट-बूट-पतलून-नकटाई आदि पहनते हैं यह घोर अधःपतनकी निशानी है, उत्थानकी नहीं।'

'महाराज ! ये सब तो ऊपरकी बातें हैं। इन बातोंसे क्या होता है। मन शुद्ध होना चाहिये।'

'आप कौन जातिके मनुष्य हैं ?'

'महाराज ! अब तो मैं, जबसे मैंने वेदान्तके ग्रन्थ देखे हैं और साधुओंका सत्सङ्ग किया है तथा मैं वेदान्ती और ब्रह्मज्ञानी बना हूँ, ब्राह्मण हो गया हूँ।'

'आपकी जाति इस जन्मकी कौन-सी है, यह बताइये ?'

'महाराज ! जन्मकी जाति तो हमारी खत्री है; पर जन्मसे जाति थोड़े ही मानी जाती है; जाति तो कर्मसे होती है ।'

'नहीं, नहीं; जाति कर्मसे नहीं होती, जाति जन्मसे होती है ।'

'नहीं महाराज ! जाति तो कर्मसे होती है ।'

'जाति कर्मसे कैसे होती है—यह सिद्ध कीजिये ।'

'महाराज ! एक ब्राह्मण है और वह यदि अपने कर्म खराब करता है और मांस, मछली, अंडे, मुर्गे खाता है तो वह ब्राह्मण कैसे रह सकता है ? वह तो शूद्र है । और एक शूद्र है वह यदि मांस, मछली, अंडे, मुर्गे नहीं खाता और अच्छे कर्म करता है तो फिर वह शूद्र कैसे रह सकता है, वह तो फिर ब्राह्मण है ?'

'नहीं, जाति जन्मसे ही होती है । कर्मसे जाति कभी नहीं बदला करती । यह एक अकाट्य सत्य सिद्धान्त है । आपने कहीं आजतक कर्म करनेसे जाति बदलती देखी ?'

'महाराज ! बहुत-से ऐसे कुत्ते देखे गये हैं कि जो बढ़िया-बढ़िया माल पूआ खाते हैं; उनकी सेवामें कई-कई नौकर रहते हैं, जो उनकी देख-भाल करते हैं, वे कुत्ते साबुन मल-मलकर नहलाये जाते हैं, पलंगोंपर सोते हैं और बड़े-बड़े राजाओं तथा नवाबोंके साथ उनकी गोदमें बैठकर कारोंमें सैर करते डोलते हैं और दूध-जलेबी, मलाई-मिश्री खाते हैं । ऐसे सुख मनुष्योंको भी नहीं मिलते जो उन्हें प्राप्त हो रहे हैं, क्या ये सब उनके कर्मोंका फल नहीं है जो वे भोग रहे हैं ?'

'जो कुत्ते बढ़िया-बढ़िया माल खाते हैं और साबुन-से मल-मलकर स्नान कराया जाता है, गद्दोंपर सोते है और कारोंमें घूमते हैं, उन कुत्तोंने क्या इस जन्ममें ऐसा कोई कर्म किया है जिसके फलस्वरूप वे इस प्रकारके सुख भोग रहे हैं ? या वह उनके पूर्वजन्मोंमें किये कर्मोंके फल नहीं हैं ? वस्तुतः यह उनके इस जन्मके कर्मोंका फल नहीं है । पूर्वजन्मोंके कर्मोंके फल हैं । अब रही यह बात कि कुत्ते खूब सुख भोग रहे हैं तो क्या कुत्तोंके बढ़िया-बढ़िया खानेसे, साबुन मल-मलकर नहानेसे और कारोंमें चलनेसे अब वे कुत्ते नहीं रहे ? क्या अब उन कुत्तोंकी जाति बदल गयी ? क्या अब वे कुत्तोंसे मनुष्य हो गये ? क्या आप उन्हें अब मनुष्य कहेंगे, कुत्ते नहीं कहेंगे ? यदि इस प्रकार जाति बदल जाती है तो आप इन कुत्तोंकी जातिको मनुष्य बना देंगे ?'

'महाराजजी ! बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं कि जिन्हें रोटी भी नहीं मिलती, कपड़ा भी पहननेको नहीं मिलता और भूखे-प्यासे मारे-मारे डोलते हैं ।'

'तो क्या भूखसे मारे-मारे डोलनेके कारण इनकी जाति बदल गयी और वे मनुष्यसे कुत्ते हो गये ? क्या आप इन्हें अब कुत्ते बोलेंगे ? कुत्ता यदि बड़े आनन्दसे रहता है तो वह मनुष्य हो गया और यदि मनुष्य दुखी रहता है तो वह कुत्ता हो गया ? क्या आप यह मानते हैं ?'

'महाराज ! बिना अच्छे कर्म किये कुत्ता इतने सुख कैसे भोग रहा है ?'

'इसमें आपकी कर्मसे जाति बदलनेकी बात बिल्कुल भी सिद्ध नहीं हुई । अब रहा यह कि वह कुत्ता जो इस समय नवाबसाहबके पास रहकर बढ़िया-बढ़िया माल उड़ाता है, गद्दोंपर पड़ा सोता है और नौकर-चाकर उसकी सेवामें रहते हैं । उसका कारण यह है कि उस कुत्तेने अपने पूर्वजन्मोंमें अंग्रेजी स्कूल-कालेजोंको दान दिये होंगे और इसने पूर्वजन्ममें अंग्रेजी अस्पताल खुलवाये होंगे । इस प्रकार पूर्वजन्ममें इसने अन्य तामसिक दान किये होंगे जिसके परिणाम स्वरूप उसे

यह फल मिला कि वह बढ़िया-बढ़िया खा रहा है और मोटरोंमें बैठा सैर-सपाटे कर रहा है। पर इतनेपर भी बना तो वह कुत्ता ही, नवाब तो वह नहीं बना ? यदि वह पूर्वजन्ममें शास्त्रानुसार और सनातन-धर्मानुसार सात्त्विक दान विधिपूर्वक करता तो उस सात्त्विक दानका फल उसे यह मिलता कि वह किसी नवाबका या किसी राजा-महाराजाका या किसी सेठ-साहूकारका कुत्ता नहीं बनता बल्कि यह स्वयं ही राजा-महाराजा, सेठ बन जाता। सुख भी खूब भोगता और फिर उसे यह कुत्तेकी अधम योनि भी भोगनी क्यों पड़ती ? एक तोता है और वह एक राजाके महलमें है, सोनेके पिंजड़ेमें है। पैरोंमें सोनेके छल्ले पहनता है, सोनेकी कटोरीमें रानीके हाथोंसे बढ़िया-बढ़िया माल खाता है और बड़े सुखसे रहता है तो क्या इतने सुख भोगनेपर वह तोता नहीं रहा ? वह लोहेके पिंजड़ेमें न रहकर सोनेके पिंजड़ेमें रहनेपर भी क्या वह बन्धनमें पड़ा हुआ नहीं है ? क्या वह बन्धनमुक्त हो गया ? तोतेके लाख सुख भोगनेपर भी उसकी जाति नहीं बदली और न इस जन्ममें कभी बदल सकती है। यह एक अकाट्य सत्य सिद्धान्त है।'

'ब्राह्मण होकर जो पाप करता है क्या वह फिर भी ब्राह्मण ही रहेगा ?'

'ब्राह्मण यदि बुरा कर्म करता है तो वह अपने किये पापोंका फल अगले जन्ममें अवश्य ही भोगेगा और वह अगले जन्ममें अधमयोनिको प्राप्त हो जायगा—शूकर-कूकर बन जायगा।'

'महाराज ! जो शूद्र अच्छे कर्म करता है तो क्या वह ब्राह्मण नहीं बनेगा ?'

'हाँ, यदि शूद्र स्वधर्मका पालन करता है और शास्त्रानुसार वर्णाश्रम-धर्मानुसार मर्यादानुसार चलता है, पापोंसे बचता है और शुभ कर्म करता है तो वह अगले जन्ममें ब्राह्मण बन जायगा, इसमें संदेह नहीं, पर इस जन्ममें बिल्कुल नहीं।'

'क्या महाराज ! हमें 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलनेका और ब्रह्मज्ञानी तथा वेदान्ती बननेका अधिकार नहीं है ?'

'शास्त्रदृष्टिसे आपको ब्रह्मज्ञानी बननेका और अपनेको वेदान्ती बतानेका बिल्कुल अधिकार नहीं है। आप संध्यावन्दन नहीं करते, भजन, पूजन, कर्मकाण्ड, श्राद्धतर्पण, शास्त्राध्ययन आदि सबको छोड़ बैठे हैं और खाली ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती बने हुए हैं तो आप यह बड़ी-भूल कर रहे हैं। आपके सिरपर हिंदुत्वका पवित्र चिह्न चोटीतक नहीं है, आपके गलेमें यज्ञोपवीत नहीं है और आप संध्यावन्दनतक भी करना नहीं जानते, फिर आप कैसे ब्रह्मज्ञानी हैं और वेदान्ती हैं। तभी तो कलिपावनावतार पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है—

> **ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर करहिं न दूजी बात।**
> **कौड़ी कारन मोहबस करैं बिप्र गुरु घात॥**

'आज इस ब्रह्मज्ञानकी आड़में बड़े-बड़े कुकर्म किये जा रहे हैं। यह घोर पाप है जो कदापि नहीं करना चाहिये।'

'तो क्या महाराजजी ! जातिको मानना बहुत ही आवश्यक है ?'

'जी हाँ, जातिका मानना बहुत ही आवश्यक है। बिना जात-पाँतको माने, बिना वर्णव्यवस्थाको माने और बिना वर्णाश्रम-धर्मको माने कदापि कल्याण नहीं हो सकता। इस विश्वमें ऐसा कोई भी देश नहीं है कि जिस देशमें यह जाति किसी-न-किसी रूपमें न मानी जाती हो ? जाति माने बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। जाति तो मनुष्योंमें, वृक्षोंमें, पत्थरोंमें, फल-फूलोंमें, पशु-पक्षियोंमें, धातुओंमें, कुत्ते-बिल्लियोंमें सभीमें होती है। बड़ी भूल कर रहे हैं वह जो यह कहते हैं कि 'जातियाँ मिटा दो' या 'जातियाँ मत मानो' अथवा 'जातियाँ नहीं माननी चाहिये।' गीतामें परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्'

चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मैंने बनाये हैं। जब भगवान् अपने श्रीमुखसे यह कहते हैं कि वर्णव्यवस्थाको मैंने बनाया है तो उस भगवान्‌की बनायी हुई वर्णव्यवस्थाको मनुष्यकृत बताना और वर्णव्यवस्थाको मिटानेका प्रयत्न करना महापाप है। जिस प्रकार इन मनुष्योंमें जातियाँ मिलती हैं, इसी प्रकार इन वृक्षोंमें भी जातियाँ मिलती हैं और इनमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियाँ हैं। तभी तो कई वृक्ष ऐसे हैं कि जिनका पूजन किया जाता है और अन्य वृक्षोंका नहीं। यह जातिकी बात नहीं तो क्या है? फलोंमें क्या आपने नहीं देखा है कि एक आमकी ही कितनी-कितनी जातियाँ होती हैं? कोई दशहरी जातिका आम है तो कोई कलमी आम है। कोई लँगड़ा आम है तो कोई सरौली आम है तो कोई देशी आम है। इस प्रकार सैकड़ों जातिके आम हैं। आप बाजारमें जायँ और किसी आमवालेकी दूकानपर जाकर कहें कि हमें आम दे दो तो वह आपसे झटसे यह पूछेगा कि आपको कौन-सा आम दें? आप कहें कि कोई-सा भी आम दे दो तो वह आपसे कहेगा कि यह देशी आम है, यह सरौली आम है, यह लँगड़ा आम है और यह कलमी आम है। आपको कौन-सी जातिका आम दें यह बताओ। आप यदि यह कहें कि हम तो जातियाँ नहीं मानते, सबको बस एक-सा ही आम मानते हैं और हम कोई भेदभाव नहीं समझते, बस, हमें तो आम दे दो तो वह आपको बेसमझ ही समझेगा और कहेगा भाग जाओ तुम्हें आम नहीं मिलता। जबतक आप यह नहीं बताओगे कि आम कौन-सी जातिका चाहिये तबतक आपको आम नहीं मिलेगा। इसी प्रकार आप पत्थरको देखिये, पत्थरमें भी अनेकों जातियाँ हैं। क्या पत्थर-पत्थर सब एक-से हैं? इनमें भी जातियाँ नहीं हैं? क्या इनमें भेद नहीं है? एक साधारण पत्थर है और दूसरा मकरानेका पत्थर है, संगमरमरका कीमती पत्थर है। क्या इनमें जातियाँ नहीं हैं? ये हीरे भी तो पत्थर ही हैं पर इनकी जाति और इनकी कीमत बहुत ऊँची है। धातुओंमें भी जातियाँ हैं। सोनेको पूज्य माना जाता है, सोना नाभिसे नीचे पहनना पाप माना गया है और सोनेकी कीमत भी बहुत ऊँची है। पीतल और सोना दोनों पीले हैं, पर पीतल तथा सोनेमें बड़ा अन्तर है। लोहा भी कई जातियोंका अलग-अलग होता है। कुत्तोंमें भी जातियाँ होती हैं। एक विलायती कुत्ता है तो एक फ्रान्सीसी कुत्ता है। अनेकों जातियोंवाले कुत्ते हैं। घोड़ोंमें भी अनेक जातियाँ हैं और अनेक नस्लें हैं। शेर भी कितनी ही जातियोंके अलग-अलग होते हैं। गायोंकी भी अलग-अलग नस्लें और जातियाँ हैं। नदियोंमें भी जातियाँ हैं और कोई नदी पूज्या है तो कोई अपूज्या है। मिट्टीतकमें भी जातियाँ हैं और पीली मिट्टीके ही गणेश बनाकर पूजे जाते हैं, अन्य जातियोंकी मिट्टीके नहीं। पक्षियोंमें कौवा चाण्डाल जातिका है और अन्य पक्षी अन्य-अन्य जातियोंके हैं। ये सब तथ्य हमारे शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं। जब सबमें जातियाँ हैं और नस्लें हैं तो क्या बस, मनुष्य ही बिना जातिके और बिना नस्लके हैं; इनकी जातियाँ ईश्वरकृत हैं। जातियाँ अवश्य होती हैं और जातिके माने बिना कभी काम नहीं चल सकता। जबतक जात-पाँतको, वर्णव्यवस्थाको, वर्णाश्रमधर्मको नहीं माना जायगा और जबतक वर्णाश्रमधर्मके अनुसार नहीं चला जायगा, तबतक लाख प्रयत्न करनेपर भी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होगी। रामराज्यमें सुख-शान्तिका कारण बस, वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलना ही था। तभी पूज्यपाद कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने लिखा है—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय रोग न सोग॥

आजके नेता जो जात-पाँत मिटाकर, वर्णव्यवस्थाको समाप्त कर और वर्णाश्रम-धर्मका विध्वंस कर देशोन्नतिके स्वप्न देख रहे हैं, यह सर्वथा प्रमाद है और विपत्तियोंको निमन्त्रण देना है और कुछ नहीं।

बोलो सनातनधर्मकी जय !

भक्तोंकी महिमा

(परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी बहुत पुरानी उक्ति)

भगवान्‌की अपेक्षा भी कुछ अंशोंमें भगवान्‌के भक्त ऊँचे माने जा सकते हैं; क्योंकि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये उनके भक्तोंका सङ्ग, आज्ञाके अनुकूल आचरण, ध्यान, शरण और सेवा—यह पाँच मुख्य साधन हैं; परंतु इन पाँचोंका भगवान्‌के प्रति प्रयोग करना कठिन है, भक्तके प्रति इनका प्रयोग सुगमतासे किया जा सकता है, फल दोनोंका एक ही है। जैसे कोई पतिव्रता स्त्री निष्कामभावसे पतिके प्रति पाँचों बातोंका प्रयोग कर परमात्माको पा सकती है, इसी प्रकार परमात्माके सच्चे भक्तके प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करके परमात्माको पा जाता है।

भगवान्‌के प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करनेमें कठिनता क्या है और भक्तके प्रति सुगमता क्या है सो समझना चाहिये।

१—भगवान्‌का सङ्ग साधकको नहीं मिलता, पर भक्तका मिल सकता है।

२—भगवान्‌की प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं मिल सकती; शास्त्रोंको ही भगवान्‌की आज्ञा मानना पड़ता है; परंतु भक्तसे आज्ञा पाकर उसके अनुकूल आचरण किया जा सकता है; शास्त्रोंके मतभेदका भी निर्णय भक्तसे ही करवाया जा सकता है। मनमें उठी हुई स्फुरणाओंको भगवत्-आज्ञा मानें तो भी एक समय अनेक स्फुरणाएँ होती हैं, उनका निर्णय भी भक्तोंसे ही करवाया जा सकता है।

३—भगवान्‌की मूर्तियोंका प्रत्यक्षका छायाचित्र नहीं है। अतएव मनमें उनका ध्यान करते समय ऐसी आशङ्का रह सकती है कि न मालूम भगवान्‌का ऐसा ही स्वरूप है या नहीं। परंतु भक्तकी देखी हुई साकार मूर्तिका ध्यान निस्संदेहरूपसे किया जा सकता है।

४—प्रत्यक्षमें भगवान्‌की शरण नहीं मिलती, परंतु भक्तकी मिल सकती है।

५—सेवा भी भगवान्‌की मूर्तियोंकी भले ही हो (यद्यपि साधककी भावनाके अनुसार वे भगवान् ही हैं तथापि साधकको मूर्तियोंमें प्रतीक या प्रतिनिधिकी ही भावना रहती है, प्रत्यक्षतया साक्षात्कारकी भावना नहीं रहती, परंतु भक्तका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके साधक उसकी सेवा कर सकता है। इस हिसाबसे भगवान्‌का सच्चा भक्त भगवान्‌से बढ़कर है।

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

यह तो सिद्धान्तरूपसे भक्तकी विशेषता बतलायी गयी। परंतु भक्त इन पाँचों बातोंमें सङ्ग और अनुकूल आचरणोंको छोड़कर बाकी ध्यान, सेवा, शरणका प्रयोग करनेमें सर्वथा निषेध करते हैं। उनका यह कथन होता है कि भाई ! ध्यान भगवान्‌का करो, शरण भी भगवान्‌की लो और सेवा भी भगवान्‌की ही करो और उनका यह कहना सत्य भी है, यद्यपि उनकी सेवासे ही काम बन जाता है; परंतु शास्त्रकी मर्यादाके कारण वे निषेध करते हैं। सङ्ग और अनुकूल आचरण

निषेध क्यों नहीं करते ? यह उनकी दयालुता है और ऐसा करनेमें शास्त्रकी मर्यादामें कोई बाधा नहीं पहुँचती । सङ्ग तो किसी प्रकार आपत्तिजनक कहा ही नहीं जा सकता, अनुकूल आचरणमें शास्त्रकी मर्यादा रहते हुए साधकका हित होता है । इसलिये वे निषेध नहीं करते । यदि कोई अपनेको सिद्ध समझकर यह मान ले कि 'इन तीनोंके करवानेमें मेरी तो कोई हानि होती नहीं; क्योंकि मैं सिद्ध हूँ, इन बेचारे साधकोंका भला हो जायगा । इसलिये इन्हें करने दिया जाय'—तो यह समझना चाहिये कि उस अपनेको सिद्ध समझनेवालेका हृदय अभी अन्धकारसे भरा पड़ा है । वह वस्तुतः सिद्ध नहीं है ।

सेवा करानेमें तप, महत्त्व, भक्ति, श्रद्धा और वीर्यका क्षय होता है । इनमें महत्त्व यानी लोकमें गौरव तो सिद्धका भी क्षय हो सकता है । सेवा करवानेसे तप क्षीण होता ही है । साधककी भक्तिका अंश सेवकको मिलता रहनेसे भक्तिका क्षय होता है, बारंबार सेवाके लिये आज्ञा देनेसे अपात्र सेवककी दृष्टिमें श्रद्धाका क्षय होता है । श्रद्धा सेवक या सेव्यके अपात्र होनेसे ही घटती है ।

सेवा करनेवाला यदि पात्र हो तो उससे लाभ होता है । सेवाका अधिकारी वह समझा जाता है कि जिसके मनमें सेवा करनेपर जरा भी अभिमान न उत्पन्न हो, सेवामें परम हर्ष हो, रोमाञ्च-अश्रुपात होने लगे । सेवा सहज हो, सेवाका उत्साह, चाव तथा निष्कामभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे और वही सेवा हो जो सेव्यके मनके अनुकूल हो । इसके विपरीत जो परिश्रम अथवा भार समझकर अपने मनको अनुकूल लगनेवाली सेवा करता है, वह सेवाका अधिकारी नहीं । भक्त तो अपनी बीमारीका भी, शारीरिक कष्ट होनेपर भी दूसरोंको भाररूप लगनेवाली सेवाके लिये आज्ञा नहीं देता ।

× × ×

भक्तके साथ ऊँचा प्रेम तब समझना चाहिये जब कि उस भक्तको छोड़ मोक्षका भी तिरस्कार हो जाय । यदि भक्त कहे कि 'भाई ! भगवान्‌की भक्ति करो, उससे मोक्षकी प्राप्ति होगी' तो उसके उत्तरमें वह प्रेमी साधक यही सोचे—कहे कि 'मेरा आपमें प्रेम नहीं है, मैं मोक्ष चाहता हूँ इसलिये तो आप मुझे मोक्षका मार्ग बतला रहे हैं । मेरी यह मोक्षकी इच्छा जबतक नहीं छूटती तबतक मुझमें प्रेम कहाँ है ।' इस प्रकार सच्चे मनसे भगवत्प्राप्तिकी इच्छाका भी त्याग कर देनेवाले प्रेमी साधकके हाथ भक्त बिक जाते हैं । इन दोनोंमें इतना प्रेम होता है कि वह साधक एकान्तमें बात करते समय यदि स्वयं भगवान् भी बाहरसे आकर पुकारें तो कोई परवा नहीं करता, वह कहता है कि 'आप हमारे एकान्तमें विघ्न डालनेके लिये क्यों पधारे हैं ?' यद्यपि उनके एकान्तमें भगवच्चर्चा ही होती है किंतु उन्हें भगवान्‌के मिलनेकी परवा नहीं होती । ऐसे बेपरवाह परंतु प्रेमी भक्तोंके लिये भगवान् भी चाह करते हैं कि किसी प्रकार यह मुझसे मिलनेकी इच्छा करे । परंतु वह प्रेमी साधक तो किसी प्रकार भी परवा नहीं करता । यदि भगवान् भी उसके प्रेमीके वेशमें उससे मिलनेके लिये आ जाते हैं और वह जान लेता है तो पतिव्रता वृन्दाकी भाँति उसे छल समझकर अपनी टेक टूटी हुई जानकर भगवान्‌को शापतक देने लगता है । ऐसे प्रेमीके हाथ ही भक्त बिकते हैं । जो साधक भगवान्‌के लिये भक्तसे प्रेम करता है, उसके भी उद्धारके लिये ही भक्त चेष्टा करते हैं, परंतु वे उसके हाथ बिकते नहीं । जैसे जो पतिव्रता स्त्री भगवत्प्राप्तिके लिये कर्तव्य समझकर पतिकी सेवा करती है उसपर भी पति परम संतुष्ट ही होता है और उससे प्रेम ही करता है; परंतु उसके हाथ बिकता नहीं । पर जो केवल पतिके लिये ही पतिसे प्रेम करती है, भगवान्‌की भी परवा नहीं करती; उसके हाथों तो पति बिकनेके लिये तैयार रहता है ।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय रोग न सोग ॥

आजके नेता जो जात-पाँत मिटाकर, वर्णव्यवस्थाको समाप्त कर और वर्णाश्रम-धर्मका विध्वंस कर देशोन्नतिके स्वप्न देख रहे हैं, यह सर्वथा प्रमाद है और घो विपत्तियोंको निमन्त्रण देना है और कुछ नहीं।

बोलो सनातनधर्मकी जय !

भक्तोंकी महिमा

(परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी बहुत पुरानी उक्ति)

भगवान्‌की अपेक्षा भी कुछ अंशोंमें भगवान्‌के भक्त ऊँचे माने जा सकते हैं; क्योंकि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये उनके भक्तोंका सङ्ग, आज्ञाके अनुकूल आचरण, ध्यान, शरण और सेवा—यह पाँच मुख्य साधन हैं; परंतु इन पाँचोंका भगवान्‌के प्रति प्रयोग करना कठिन है, भक्तके प्रति इनका प्रयोग सुगमतासे किया जा सकता है, फल दोनोंका एक ही है। जैसे कोई पतिव्रता स्त्री निष्कामभावसे पतिके प्रति पाँचों बातोंका प्रयोग कर परमात्माको पा सकती है, इसी प्रकार परमात्माके सच्चे भक्तके प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करके परमात्माको पा जाता है।

भगवान्‌के प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करनेमें कठिनता क्या है और भक्तके प्रति सुगमता क्या है सो समझना चाहिये।

१—भगवान्‌का सङ्ग साधकको नहीं मिलता, पर भक्तका मिल सकता है।

२—भगवान्‌की प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं मिल सकती; शास्त्रोंको ही भगवान्‌की आज्ञा मानना पड़ता है; परंतु भक्तसे आज्ञा पाकर उसके अनुकूल आचरण किया जा सकता है; शास्त्रोंके मतभेदका भी निर्णय भक्तसे ही करवाया जा सकता है। मनमें उठी हुई स्फुरणाओंको भगवद्-आज्ञा मानें तो भी एक समय अनेक स्फुरणाएँ होती हैं, उनका निर्णय भी भक्तोंसे ही करवाया जा सकता है।

३—भगवान्‌की मूर्तियोंका प्रत्यक्षका छायाचित्र नहीं है। अतएव मनमें उनका ध्यान करते समय ऐसी आशङ्का रह सकती है कि न मालूम भगवान्‌का ऐसा ही स्वरूप है या नहीं। परंतु भक्तकी देखी हुई साकार मूर्तिका ध्यान निस्संदेहरूपसे किया जा सकता है।

४—प्रत्यक्षमें भगवान्‌की शरण नहीं मिलती, परंतु भक्तकी मिल सकती है।

५—सेवा भी भगवान्‌की मूर्तियोंकी भले ही हो (यद्यपि साधककी भावनाके अनुसार वे भगवान् ही हैं) तथापि साधकको मूर्तियोंमें प्रतीक या प्रतिनिधिकी ही भावना रहती है, प्रत्यक्षतया साक्षात्कारकी भावना नहीं रहती, परंतु भक्तका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके साधक उसकी सेवा कर सकता है। इस हिसाबसे भगवान्‌का सच्चा भक्त भगवान्‌से बढ़कर है।

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

यह तो सिद्धान्तरूपसे भक्तकी विशेषता बतलायी गयी। परंतु भक्त इन पाँचों बातोंमें सङ्ग और अनुकूल आचरणोंको छोड़कर बाकी ध्यान, सेवा, शरणके प्रयोग करनेमें सर्वथा निषेध करते हैं। उनका यही कथन होता है कि भाई ! ध्यान भगवान्‌का करो, शरण भी भगवान्‌की लो और सेवा भी भगवान्‌की ही करो और उनका यह कहना सत्य भी है, यद्यपि उनकी सेवासे ही काम बन जाता है; परंतु शास्त्रकी मर्यादाके कारण वे निषेध करते हैं। सङ्ग और अनुकूल आचरणके

निषेध क्यों नहीं करते ? यह उनकी दयालुता है और ऐसा करनेमें शास्त्रकी मर्यादामें कोई बाधा नहीं पहुँचती। सङ्ग तो किसी प्रकार आपत्तिजनक कहा ही नहीं जा सकता, अनुकूल आचरणमें शास्त्रकी मर्यादा रहते हुए साधकका हित होता है। इसलिये वे निषेध नहीं करते। यदि कोई अपनेको सिद्ध समझकर यह मान ले कि 'इन तीनोंके करवानेमें मेरी तो कोई हानि होती नहीं; क्योंकि मैं सिद्ध हूँ, इन बेचारे साधकोंका भला हो जायगा। इसलिये इन्हें करने दिया जाय'—तो यह समझना चाहिये कि उस अपनेको सिद्ध समझनेवालेका हृदय अभी अन्धकारसे भरा पड़ा है। वह वस्तुतः सिद्ध नहीं है।

सेवा करानेमें तप, महत्त्व, भक्ति, श्रद्धा और वीर्यका क्षय होता है। इनमें महत्त्व यानी लोकमें गौरव तो सिद्धका भी क्षय हो सकता है। सेवा करवानेसे तप क्षीण होता ही है। साधककी भक्तिका अंश सेवकको मिलता रहनेसे भक्तिका क्षय होता है, बारंबार सेवाके लिये आज्ञा देनेसे अपात्र सेवककी दृष्टिमें श्रद्धाका क्षय होता है। श्रद्धा सेवक या सेव्यके अपात्र होनेसे ही घटती है।

सेवा करनेवाला यदि पात्र हो तो उससे लाभ होता है। सेवाका अधिकारी वह समझा जाता है कि जिसके मनमें सेवा करनेपर जरा भी अभिमान न उत्पन्न हो, सेवामें परम हर्ष हो, रोमाञ्च-अश्रुपात होने लगे। सेवा सहज हो, सेवाका उत्साह, चाव तथा निष्कामभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे और वही सेवा हो जो सेव्यके मनके अनुकूल हो। इसके विपरीत जो परिश्रम अथवा भार समझकर अपने मनको अनुकूल लगनेवाली सेवा करता है, वह सेवाका अधिकारी नहीं। भक्त तो अपनी बीमारीका भी, शारीरिक कष्ट होनेपर भी दूसरोंको भाररूप लगनेवाली सेवाके लिये आज्ञा नहीं देता।

× × ×

भक्तके साथ ऊँचा प्रेम तब समझना चाहिये जब कि उस भक्तको छोड़ मोक्षका भी तिरस्कार हो जाय। यदि भक्त कहे कि 'भाई! भगवान्‌की भक्ति करो, उससे मोक्षकी प्राप्ति होगी' तो उसके उत्तरमें वह प्रेमी साधक यही सोचे—कहे कि 'मेरा आपमें प्रेम नहीं है, मैं मोक्ष चाहता हूँ इसलिये तो आप मुझे मोक्षका मार्ग बतला रहे हैं। मेरी यह मोक्षकी इच्छा जबतक नहीं छूटती तबतक मुझमें प्रेम कहाँ है।' इस प्रकार सच्चे मनसे भगवत्प्राप्तिकी इच्छाका भी त्याग कर देनेवाले प्रेमी साधकके हाथ भक्त बिक जाते हैं। इन दोनोंमें इतना प्रेम होता है कि वह साधक एकान्तमें बात करते समय यदि स्वयं भगवान् भी बाहरसे आकर पुकारें तो कोई परवा नहीं करता, वह कहता है कि 'आप हमारे एकान्तमें विघ्न डालनेके लिये क्यों पधारे हैं ?' यद्यपि उनके एकान्तमें भगवच्चर्चा ही होती है किंतु उन्हें भगवान्‌के मिलनेकी परवा नहीं होती। ऐसे बेपरवाह परंतु प्रेमी भक्तोंके लिये भगवान् भी चाह करते हैं कि किसी प्रकार यह मुझसे मिलनेकी इच्छा करे। परंतु वह प्रेमी साधक तो किसी प्रकार भी परवा नहीं करता। यदि भगवान् भी उसके प्रेमीके वेशमें उससे मिलनेके लिये आ जाते हैं और वह जान लेता है तो पतिव्रता वृन्दाकी भाँति उसे छल समझकर अपनी टेक टूटी हुई जानकर भगवान्‌को शापतक देने लगता है। ऐसे प्रेमीके हाथ ही भक्त बिकते हैं। जो साधक भगवान्‌के लिये भक्तसे प्रेम करता है, उसके भी उद्धारके लिये ही भक्त चेष्टा करते हैं, परंतु वे उसके हाथ बिकते नहीं। जैसे जो पतिव्रता स्त्री भगवत्प्राप्तिके लिये कर्तव्य समझकर पतिकी सेवा करती है उसपर भी पति परम संतुष्ट ही होता है और उससे प्रेम ही करता है; परंतु उसके हाथ बिकता नहीं। पर जो केवल पतिके लिये ही पतिसे प्रेम करती है, भगवान्‌की भी परवा नहीं करती; उसके हाथों तो पति बिकनेके लिये तैयार रहता है।

मन्मना भव

(लेखक—आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री)

इस मानवदेहकी बड़ी महिमा है, देवता भी इसकी चाह करते हैं; क्योंकि इस देहमें यथार्थ धर्मकी और परमात्म-तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। इसे प्राप्त करके भी जो लोग परमात्माकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते, वे वस्तुतः प्रकृतिसे—मायासे मोहित हैं। यह मानव-योनि ज्ञान-विज्ञानका मूल-स्रोत है। जो इसके द्वारा इस जन्ममें अपने आत्मस्वरूप परमात्माको नहीं जान लेता, उसे कहीं भी, किसी योनिमें शान्ति या सुख नहीं प्राप्त हो सकता। यह जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक योनियोंमें घूमता रहता है। परमात्माकी कृपासे ही यह कभी मनुष्य-देह प्राप्त करता है। यह शरीर इस प्रकार बहुत ही दुर्लभ है, इसमें परमात्माकी प्राप्ति और तत्त्वज्ञान और भी दुर्लभ है। परंतु यही एक ऐसी योनि है जिसमें जीवको सुखपूर्वक तत्त्व-ज्ञान और निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है कि वे अपने मनको प्रकृतिके गुणोंसे हटाकर परमात्मामें लगायें।

जगत्‌के सभी स्त्री-पुरुष केवल इसीलिये कार्य करते हैं कि उन्हें सुख प्राप्त हो और उनका दुःख दूर हो, कष्टसे छुटकारा मिले; परंतु उन कर्मोंसे न तो उनका दुःख दूर होता है और न उन्हें शाश्वत सुखकी ही प्राप्ति होती है। जीव सुखकी इच्छासे जिस-जिस वस्तु, साधन, पदार्थको जुटाता है, उसी-उसीको निर्दय काल विनष्ट कर देता है, जिसके लिये यह जीव कितना दुखी होता है, शोक करता है। इसका संक्षेपमें यही कारण है कि यह मन्दमति जीव अपने नाशवान् इस शरीरको, उसके सगे-सम्बन्धियोंको, घर, द्वार, खेत, पशु, धन एवं बन्धुओंको मोहवश अजर-अमर माने बैठा है। यहाँ यह जीव जिस-जिस योनिमें जन्म धारण करता है, उसी-उसीमें मस्त रहता है, सुख मानता है और उसे विरक्ति नहीं होती। यह प्रकृति नटीसे ऐसा मोहित है कि कर्मवश नारकीय योनियोंमें भी जन्म लेनेपर भी वहाँके विष्ठा, मल-मूत्र आदि भोगोंमें ही सुख माननेके कारण उसे भी नहीं छोड़ना चाहता। यह मूढ़ अपने शरीर, स्त्री-पुत्र, गृह-द्वार, पशु-धन और बन्धु-बान्धवोंमें अत्यन्त आसक्त होकर उनके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न मनोरथोंकी कल्पना करता हुआ अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता है।

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
आरूढमूलहृदयमात्मानं बहु मन्यते ॥

परंतु संसारके सब-के-सब प्रिय विषय एक मनुष्यकी कामनाओंको भी पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला संतोषी न हो।

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥

प्रत्येक परिस्थितिमें सुख माननेवाला संयमी तथा संतोषी पुरुष अपना जीवन सुखसे व्यतीत करता है, परंतु अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला त्रैलोक्यका राज्य पा जानेपर भी सदा दुखी ही रहता है; क्योंकि उसके हृदयमें असंतोषकी आग जो धधकती रहती है। इसमें संदेह नहीं कि धन और भोगोंसे संतुष्ट न होना ही जन्म-मृत्युका कारण है। अतः जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय उसीमें देव, ऋषि, पितर, मनुष्य आदिको उनका अपना अंश देकर और इस प्रकार यज्ञद्वारा बचे हुए प्रसादको जो ग्रहण करता है उसे ही जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा मिलता है।

मनुष्य-देह मिलनेपर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण अहंकार न हो जाय तो समझना चाहिये कि यह भगवान्‌की बड़ी कृपा है। कुलीनता, पद तथा धन आदि ऐसे बहुत-से कारण हैं जो अभिमान उत्पन्न करके मनुष्यको उसके श्रेय-साधनसे वञ्चित कर देते हैं। जिससे वह इन समस्त प्राणियोंमें स्थित उन परमात्मासे ही द्वेष करने लगता है। अतः कभी उसके मनको शान्ति नहीं मिल पाती।

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥

जब निरन्तर सभी प्राणियोंमें भगवान्‌की भावना की जाती है तब थोड़े ही समयमें चित्तसे स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर होकर यह निश्चय हो ही जाता है कि समस्त देहधारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तवमें उस परमात्मामें ही पहले यह जगत् लीन था, मध्यमें भी यह उसीमें स्थित है और अन्तमें भी यह पुनः परमात्मामें ही लीन हो जायगा। वे परमात्मा ही इस जगत्‌के आदि, मध्य और अन्त हैं। ठीक, वैसे ही जैसे घड़ेका आदि, मध्य और अन्त मिट्टी ही है। साथ ही वे ज्यों-के-त्यों हैं अर्थात् पूर्ण हैं—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जो लोग भगवान्‌की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा माने बैठे हैं, उन्हींको ऐसा आत्म-मोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है।

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया।
सुहृद् दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम्॥

भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि यह अत्यद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष मुझमें मन लगाकर मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको सहज ही पार कर जाते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न रहनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष इस संसारकी मायाका अनुभव करते हैं। समस्त प्राणियों-का आत्मा अपने हित और अहितको भलीभाँति जानता है; क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्यक्ष अनुभव और अनुमानके द्वारा अपने हित और अहितका निर्णय करनेमें पूर्णतः समर्थ है। हमारे समक्ष तराजूके पलड़ोंकी भाँति विचारकी दो कोटियाँ हैं, उनमें एक कोटिमें, जिसमें यह जीव निरन्तर सुख मान रहा है वे, समस्त सांसारिक सुख हैं और दूसरी कोटिमें श्रीपति भगवान् हैं। अब युक्ति और अनुभवसे हम भलीभाँति विचार करें कि इन दोनोंमें विश्रान्ति अर्थात् सुख और शान्ति किसमें है। जिसमें ये वस्तुएँ मिलें उसीको हम ग्रहण करें। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्ब्यपि।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥

गृही पुरुष कुटुम्बमें आसक्त न हो और न प्रमाद करे। बुद्धिमान् पुरुषको यह समझ लेना चाहिये कि इस लोककी सभी वस्तुएँ नाशवान् हैं। यहाँ सुखका अत्यन्ताभाव है अर्थात् यहाँ न कभी सुख था और न रहेगा। जहाँ जन्म-मृत्युकी परम्परा चलती हो वहाँ भला, सुखकी गन्ध कहाँ? यह जो स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, भाई-बन्धु और गुरुजनोंका मिलना-जुलना है। यह वैसा ही है जैसा प्याऊपर कुछ बटोही इकट्ठे हो गये हों। सबको अलग-अलग रास्ते जाना है। जैसे स्वप्न नींद टूटनेतक ही रहता है वैसे ही इन मिलने-जुलने-

वालोंका सम्बन्ध भी बस, शरीरके रहनेतक ही रहता है, फिर कौन किसको पूछता है ?

पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः पान्थसंगमः।
अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा॥

संसारासक्त व्यक्ति सोचते ही रहते हैं कि हाय! हाय! मेरे मा-बाप बूढ़े हो गये, पत्नीके बाल-बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं। मेरे न रहनेपर ये दीन-अनाथ और दुखी हो जायँगे; फिर इनका जीवन कैसा होगा! इस प्रकार घर-गृहस्थीमें, सांसारिक वासनाओंमें, जिसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है, वह मूढ़-बुद्धि पुरुष विषय-भोगोंसे कभी तृप्त नहीं होता। उन्हींमें उलझकर अपना जीवन खो बैठता है और मृत्यु होनेपर घोर तमोमय नरकमें जाता है। उससे छुटकारा पानेका उपाय एक ही है जो भगवान् स्वयं बतलाते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(गीता ९। ३४)

'केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें ही मन लगाओ और मुझे ही हर तरहसे भजो। मेरा ही पूजन-नमस्कार करो। इस प्रकार करनेपर तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।' उद्धवसे तो उनका स्पष्ट ही कहना है—**'धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम्।'** 'उद्धव! जिससे मेरी भक्ति हो, वहीं धर्म है, जिससे ब्रह्म और आत्माकी एकताका साक्षात्कार हो वही ज्ञान है।' यद्यपि यह मनुष्यशरीर नाशवान् है; परंतु इसके द्वारा परमार्थकी, सत्यवस्तुकी प्राप्ति हो सकती है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह यह जानकर मृत्युसे पूर्व ही सावधान होकर ऐसी साधना कर, ले, जिससे जन्म-मृत्युकी परम्परासे सदाके लिये छुटकारा मिल जाय! इन्द्रियोंको और अपने प्राणोंको वशमें रक्खे। मनको एक क्षणके लिये भी स्वतन्त्र न होने दे। उसकी एक-एक गतिविधिको देखता रहे। इस प्रकार सत्त्वसम्पन्न बुद्धिद्वारा धीरे-धीरे मनको अपने वशमें कर लेना चाहिये और भगवान्में उसे अनन्य भावसे लगाये रखनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये।

सत्त्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत्।

भगवान् कपिलका कथन है—जबतक समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना—भगवद्भावना न हो जाय तबतक मन, वाणी, शरीरके सभी संकल्पों और कर्मोंद्वारा भगवान्‌की उपासना करता चले।

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः॥

मनको लकवा मार गया

नाथ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले, रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥
आते लोग सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें समझाऊँ क्या मैं जब न दीखता कुछ सत् सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

जीवात्माका स्वरूप

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)

शंकराचार्यका 'कस्त्वम्', सुकरातका 'Know Thyself' आपेको जानो और महर्षि रमणका 'तुम क्या हो'—ये प्रश्न हमारा ध्यान आत्मस्वरूपकी ओर आकर्षित करते हैं। आत्मा सो परमात्मा—इस लोकोक्तिमें आत्मा जीव या जीवात्माके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। जीवात्मा क्या है? यह विवेचन करनेसे पहले यह सम्यक् जान लेना आवश्यक है कि वह क्या नहीं है। आत्माके सम्बन्धमें अनेक धारणाएँ हैं।

भारतमें प्राचीन कालसे चार्वाक दर्शनका यह सिद्धान्त है कि देहसे भिन्न आत्माका कोई अस्तित्व नहीं है। चार्वाकको बृहस्पतिका शिष्य कहा गया है। उसके ये दो श्लोक प्रसिद्ध हैं—

देहस्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः।
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः॥
यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात् 'स्थूल भूतोंके योगसे देहकी उत्पत्ति है और वही आत्मा है न कि कोई अन्य। न स्वर्ग है, न मोक्ष है और न परलोक है। जबतक जीओ सुखसे जीवन बिताओ और ऋण करके भी घीका सेवन करना चाहिये; क्योंकि शरीरके भस्म हो जानेपर फिर पुनर्जन्म कहाँ।' यह मत देहात्मवाद है। आधुनिक भौतिकवादी भी इसी मतके अनुयायी हैं। इसी मतका प्रचारक यूनानमें एपीक्यूरस (३४१–२७० ई० पू०) हुआ था। उसकी धारणा थी कि परमाणुओंसे बना मूर्त्त संसार ही सत्य है और सुखसे रहना ही जीवनका चरम उद्देश्य है; शरीरके साथ ही आत्मा प्रकट होता है और उसके नष्ट होनेपर आत्माका नाश हो जाता है।

चार्वाकका देहात्मवाद और उसका परिणाम सुखवाद साधारण जनोंमें इतना प्रिय हुआ कि वह लोकायत भी कहलाने लगा। आध्यात्मिक प्रवृत्तिके पोषक पण्डितोंके लिये इस विचारधारासे लोहा लेना परम कर्तव्य बन गया। महर्षि कपिलने निज युक्तिरूपी कटारके प्रहारसे इस मतके मस्तकको छिन्न-भिन्न कर डाला। उनका सूत्र है—'**न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः**'—अर्थात् देहका स्वाभाविक धर्म चैतन्य नहीं है; क्योंकि प्रत्येक भूतमें चेतनता नहीं देखी जाती। जिस पदार्थका जो धर्म है वह सदा उसके साथ देखा जाता है, चाहे पदार्थोंका समुदाय रहे या एक ही पदार्थ रहे। यदि चैतन्य देहका धर्म होता तो वह देहसे अलग नहीं हो सकता; अतः शरीरकी विद्यमानतामें किसीकी कभी मृत्यु नहीं होती। पर देहमें चैतन्यका अभाव होनेपर देह मृत हो जाता है। सांख्यदर्शन आत्माको अनादि, चेतन, द्रष्टा, भोक्ता और प्रकृतिसे पृथक् मानता है और पुर (देह) में रहनेके कारण उसकी संज्ञा पुरुष है। प्रकृति अनादि, अचेतन और पुरुषकी भोग्या है।

महर्षि पतञ्जलिने आत्माके सम्बन्धमें सांख्यदर्शनका अनुसरण किया है और प्रकृतिकी विकृति चित्तवृत्तिसे पृथक्ताको स्वरूप-स्थिति या कैवल्य बतलाया है। कैवल्यका अर्थ अकेलापन है। कैवल्यपादका अन्तिम सूत्र (४–३४) यह है—**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति**—अर्थात् प्रकृतिके गुणोंका जब पुरुषके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता तो वे अपने कारण (अव्यक्त प्रकृति) में विलीन हो जाते हैं और यह स्थिति कैवल्य या स्वरूपप्रतिष्ठा कही जाती है।

दोनों दर्शनोंके अनुसार पुरुष मूलतः प्रकृतिसे पृथक् है। दोनोंका संयोग होनेपर प्रकृति चेतनवत् कार्य करती है और पुरुष चित्तकी वृत्तियोंके अनुरूप निज स्वरूप समझने लगता है जैसा कि सूत्र है—**वृत्तिसारूप्यमितरत्र** (१।४) अर्थात् आत्माका स्वरूप चित्तवृत्तिके सदृश हो जाता है।

अब न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शनकी दृष्टिसे आत्मा और देहके सम्बन्धमें विचार करना है। न्यायके सूत्रकार महर्षि अक्षपाद हैं, जिनका प्रसिद्ध नाम गौतम मुनि है। न्यायमें आत्मा, शरीर, बुद्धि, मन इत्यादि बारह प्रमेय माने गये हैं। प्रमाका अर्थ यथार्थ ज्ञान है। प्रमा प्रमाणोंद्वारा प्राप्त होती है और प्रमाणोंद्वारा जिसका यथार्थ ज्ञान हो सके वह 'प्रमेय' कहलाता है। गौतमने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—ये चार प्रमाण माने हैं। आप्त पुरुषोंके वचनोंको शब्द-प्रमाण कहते हैं। न्यायसूत्र

(१-१-१०) में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानको आत्माके लिङ्ग या चिह्न कहा गया है। यहाँ आत्माको जीवात्मा अर्थात् शरीरमें स्थित समझना चाहिये और वह नित्य है। इच्छा, द्वेष इत्यादि आत्माके अनुमानके चिह्न किस प्रकार हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। जिस पुरुषने पहले आमके मधुर रसका स्वाद लिया है उसे आम देखनेपर फिर उसका आस्वादन करनेकी इच्छा होती है; अतः इच्छा करनेवाला वही है जिसने पहले आम चख लिया है, न कि शरीर, जो प्रतिक्षण बदलता रहता है। शरीरको आत्माका भोगायतन कहा है। यथा—'चेष्टेन्द्रियार्थाऽऽश्रयः शरीरम्' (१। १। ११) अर्थात् शरीर चेष्टा, इन्द्रियों और विषयोंका आश्रय है। अध्याय तृतीयके प्रथम आह्निकके सूत्रोंके भाष्यमें इस बातका विशद विवेचन है कि आत्मा शरीर, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादिसे भिन्न है और न उनका संघातमात्र है।

महर्षि कणादका वैशेषिक दर्शन पदार्थोंके विशेष या भेदका विवेचन करता है। पदार्थ वह है जो प्रतीति या अनुभवसे सिद्ध हो सके। धर्मी पदार्थको द्रव्य (Substanee) कहा है। नो द्रव्य—पञ्चमहाभूत, काल, दिशा, आत्मा और मन—माने गये हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और मन या अन्तःकरण ज्ञानका साधन है। न्यायदर्शनके सदृश इस दर्शनमें भी माना गया है कि 'सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि (३। २। ४) अर्थात् सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्नको आत्माके लिङ्ग माने हैं। भाष्यकार प्रशस्तपादने निज ग्रन्थ 'पदार्थधर्मसंग्रह'में लिखा है कि जैसे रथके व्यापारका कारण सारथिरूप चेतन पदार्थ है वैसे ही इष्ट वस्तुको पानेका प्रयत्न शरीरमें चेतन पदार्थ आत्मासे होता है।

आत्मा अनेक माने गये हैं। यथा—'व्यवस्थातः नाना' (३। ३। २०) और सूत्र २१ में कहा है 'शास्त्रसामर्थ्याच्च' अर्थात् शास्त्रके अनुसार अनेक आत्मा हैं; क्योंकि मुक्त आत्मा अनेक माने गये हैं। यही धारणा नैयायिकोंकी है कि आत्मा अनेक हैं। सांख्यदर्शनके सूत्र 'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्' (१। १४९) अर्थात् जन्मादि व्यवस्थासे पुरुष या जीवात्मा बहुत हैं। वे चेतन और प्रकृति अचेतन है।

जैमिनि मुनिने मीमांसादर्शनमें वेदविहित कर्मकाण्डपर विचार करते और आत्माको नित्य मानते हुए 'स्वर्गकामो यजेत' अर्थात् स्वर्ग-प्राप्तिके लिये यज्ञ करना आवश्यक बतलाया है। महर्षि वेदव्यासने उत्तरमीमांसा या वेदान्त-दर्शनमें अध्याय ३ पाद ३ के सूत्र ५३। ५४ में देहात्मवादका खण्डन किया है।

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत्।
(३। ३। ५४)

अर्थात् शरीरसे आत्मा भिन्न है; क्योंकि शरीरके विद्यमान होते हुए भी उसमें आत्मा नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि शरीर क्षेत्र है और आत्मा क्षेत्रज्ञ है। ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक भाष्यमें शंकराचार्यने देहात्मवादके दुर्गको ध्वस्त कर दिया है। धर्मी यथा अग्नि और उसका धर्म यथा दाहकत्व—एक दूसरेसे अलग नहीं हो सकते। यदि शरीरका धर्म आत्मा होता तो शरीरकी विद्यमानतामें आत्मा उससे अलग नहीं हो सकता। पर यह प्रत्यक्ष है कि मरनेपर शवमात्र पड़ा रहता है, पर चेतन तत्त्व आत्मा चला जाता है। उन्होंने परकाया-प्रवेशद्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि शरीरसे आत्मा भिन्न है, जैसे निवासी और उसका निवास-स्थान।

जर्मन वैज्ञानिक हेकलने निज ग्रन्थ 'दि रिडल ऑव दि यूनिवर्स' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि परमाणुओंमें चेतनता निहित है; अतः मनुष्यमें चेतनता शरीरका कार्य है। पर यदि महाभूतोंमें चेतनता होती तो उनसे निर्मित प्रत्येक वस्तुमें वह दिखायी पड़ती। जबतक आत्मा शरीरमें रहता है तबतक ही वह चेतनवत् प्रतीत होता है; अतः चेतनताका कारण आत्मा ही है। यह भी कहा जाता है कि शरीरसे ही बाह्य जगत्‌की प्रतीति होती है। पर जैसे दीपक देखनेका साधनमात्र है न कि उसका कारण; इसी प्रकार देह बाह्य ज्ञानका साधनमात्र है। आधुनिक अनुसंधानोंसे यह सिद्ध हो गया है कि इन्द्रियोंकी सहायता बिना भी बाह्यजगत्‌का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

भारतीय सेनाके एक अंग्रेज अफसर श्री एल० पी० फैरल अनेक बरसोंसे इस खोजमें लगे हुए थे कि आत्माकी सत्ता शरीरसे स्वतन्त्र है, या नहीं और पुनर्जन्मका व्यापक विश्वास किस आधारपर है। उन्हें जो प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुए, उनका रोचक वर्णन साप्ताहिक हिन्दुस्तानके १७-५-

१९५९ के अङ्कमें प्रकाशित हुआ है। उन्होंने अपनी आँखोंके सामने एक वृद्ध योगीको मृत युवकके शरीरमें प्रवेशकर चलते-फिरते देखा और उससे संपर्क स्थापित कर सारा रहस्य अवगत किया। इसी प्रकार पुनर्जन्मका भी अकाट्य प्रमाण प्राप्त किया। विचार-संक्रमण (टेलीपेथी) और दिव्यदृष्टि (क्लेरवॉयेन्स) के सम्बन्धमें प्रो० जे० बी० राइन-सरीखे वैज्ञानिकोंके प्रयोगात्मक अनुसंधानोंने सिद्ध कर दिखाया है कि भौतिक साधनोंके बिना भी दूसरेके विचार और अति दूरस्थ या भविष्य घटनाओंका ज्ञान हो सकता है। यह भी प्रमाणित हो गया है कि संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जीव एक देह त्याग कर नया जन्म ग्रहण करते हैं और उन्हें पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है।

आत्मा देहसे भिन्न है—यह विवेचन होनेके पश्चात् अब यह विचार करना है कि वह वास्तवमें क्या है। शरीरमें निवास करनेवाले आत्माको देही, शरीरी, पुरुष, जीव या जीवात्मा कहते हैं। जो पुरुष आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है, वह मुक्तात्मा कहलाता है। यह अवस्था मोक्ष या निर्वाण है। यह कैसे प्राप्त होती है—इसका वर्णन शिवगीतामें इस प्रकार है—

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥
(१३। ३२)

अर्थात् मोक्ष ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका किसी स्थानमें निवास हो या जिसके लिये किसी दूसरे ग्राम जाना पड़े, अन्तःकरणसे अज्ञानका नाश हो जाना ही मोक्ष है। मुक्तात्माके लक्षण गीताके स्थितप्रज्ञ, भक्तिमान् और त्रिगुणातीतके समान हैं और मुक्तावस्था ही ब्राह्मी स्थिति है।

श्रीशंकराचार्यने मुक्तावस्थामें आत्माका वर्णन इस प्रकार किया है—

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः।
अवस्थात्रयसाक्षी सन् निर्विकारो निरञ्जनः॥
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता।
सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते।
तमात्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया॥

अर्थात् यह आत्मा जो स्वयंप्रकाश, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशोंसे भिन्न तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंका साक्षी होकर भी निर्विकार, निर्मल और नित्यानन्द है, उसे ही विद्वान् पुरुष अपना आत्मा समझे; उसके द्वारा सबका अनुभव किया जाता है, पर वह स्वयं इन्द्रियोंद्वारा जाना नहीं जाता। सबको जाननेवाले उस आत्माको तू अपनी सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा जान।

गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक १७ से २५ तक भगवान् श्रीकृष्णने आत्माको अव्यक्त, अविनाशी, अजन्मा, नित्य, सनातन, अवध्य, अचिन्त्य, अविकार्य इत्यादि लक्षणोंसे व्यक्त किया है। पञ्चदश अध्यायके श्लोक सप्तममें **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'**—देहमें जीवात्माको भगवान्ने अपना ही अंश बतलाया है। आगे चलकर आठवें श्लोकमें कहा है कि जैसे वायु गन्धको ग्रहण करके अन्यत्र ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा जिस पहले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंके संस्कारोंको ग्रहण करके नवीन देहमें ले जाता है। इस बातका सारांश यह है कि स्थूल शरीर शवके रूपमें पड़ा रहता है। पर मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादि तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर जीवात्माका संगी रहता है। गीताके सप्तम अध्यायके श्लोक ४ और ५ में कहा है कि सूक्ष्म या लिङ्ग देह अपरा प्रकृतिके अन्तर्गत है और जीवरूप चेतन तत्त्व भगवान्की परा प्रकृति है। छठे श्लोकमें कहा गया है कि भगवान् सम्पूर्ण जगत्के मूल कारण हैं और समस्त जीव इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पत्तिवाले हैं। ईश्वर अनादि है, अतः गीतामें **'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'** (१३। १९) प्रकृति और जीवात्मा भी अनादि बतलाये गये हैं।

सूक्ष्म शरीरके सम्बन्धमें 'धर्मयुग' ९। ४। १९६७ में प्रकाशित पूर्वजन्मकी स्मृति पठनीय है। इंगलैंडके एक नगरमें पोलक नामक पुरुषकी दो लड़कियोंकी मृत्यु दुर्घटनासे हो गयी। उस समय जौआना ११ और जैकलीन ६ वर्षकी थी। कुछ समयके बाद उसके यहाँ दो जुड़वाँ कन्याओंने जन्म लिया और उनका नाम जेनिफर और गिलियन रक्खा गया। पहली लड़की चार मिनट छोटी थी। दोनोंके स्वभावोंमें पूर्वजन्मकी समानता पायी गयी और वस्तुओं तथा घटनाओंकी स्मृति सही-सही प्रमाणित हुई।

जीवात्माके आकारके बारेमें कठोपनिषद् कहता है कि 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः' (२ । ३ । १७) अर्थात् जीवका परिमाण अँगूठेके बराबर है । श्वेताश्वतरोपनिषद् इस कथनको और भी स्पष्ट कर देता है—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ॥
(५ । ८)

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥
(५ । ९)

अर्थात् देखा गया है कि जीवका आकार अँगूठेके बराबर है । वह सूर्यके समान रूपवाला है, संकल्प और अहंकारसे युक्त है, बुद्धिके और अपने गुणोंके कारण आरेकी नोककी नोक-जैसा है । बालकी नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उसके समान उसका आकार है और वह असीम हो सकता है ।

जीवके आकारका अङ्गुष्ठमात्र या बालकी नोकका दस हजारवाँ भाग होनेकी संगति इस प्रकार है । सूक्ष्मशरीरमें आत्माका रूप अङ्गुष्ठमात्र माना गया है । स्थूल शरीरसे वियोग होनेके पश्चात् जीव इसी रूपमें रह सकता है । वह जब चाहे तब संकल्पमात्रसे निज पूर्व स्थूलदेहमें प्रकट हो सकता है । रामायणमें सीताकी अग्निपरीक्षाके समय देवलोकवासी दशरथका पूर्व शरीर धारणकर आनेका उल्लेख है और महाभारतके अनुसार इसी प्रकार जनमेजयके स्वर्गवासी पिता परीक्षित् स्थूलशरीरमें प्रकट हुए थे । अरविन्दाश्रमसे प्रकाशित 'अदिति' पत्रिकाके एक लेखमें यह बात प्रकाशित हुई है कि अरविन्दके दिवंगत गुरु उनके शरीरमें प्रवेशकर 'वन्दे मातरम्'में देशोत्थानके लिये अपने विचार व्य किया करते थे, जब कि अरविन्द अपने मित्रोंसे वार्ता करते रहते थे और उनकी लेखनी चलती रहती थ सूक्ष्म शरीरकी गतिमें किसी प्रकारका भौतिक पदार्थ बा नहीं दे सकता । वह स्थूल शरीरका स्वामी है ।

कारणशरीर सूक्ष्मशरीरसे भी सूक्ष्मतर है । उसका आ वालाग्रके 'शतभागस्य शतधा' श्रुतिके अनुसार है । कल अन्तमें जीवात्मा इसी रूपमें परमात्माकी प्रकृतिमें लय प्राप्त होता है । जैसा कि गीतामें वर्णन है—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥
(९ ।

अर्थात् हे अर्जुन ! कल्पके अन्तमें सब जीव प्रकृतिको प्राप्त होते हैं यानी लय होते हैं और कल आदिमें मैं उनकी रचना करता हूँ । आगेके श्लोकमें है कि 'भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्'— संस्कारोंके वशमें हुए इस समस्त जीव-समुदायको मैं उन कर्मोंके अनुसार रचता हूँ । कारणशरीर संस्कारोंका सं है और कर्मोंसे संस्कार बनते हैं, अतः कारणशरीर संस्क मय है । कतिपय मनीषियोंकी मान्यता है कि गर्भाधान समय जीव इसी सूक्ष्मतम रूपमें प्रवेश करता है । सारांश है—कारणशरीरके अन्तर्गत लिङ्गदेह या सूक्ष्मशरीर है वह स्थूलशरीरमें व्यक्त होता है । आधुनिक विज्ञान भी सिद्ध करता है कि जो तत्त्व जितना सूक्ष्म होता है उतना ही अधिक शक्तिशाली है और हाइड्रोजन बम सिद्धान्तकी पुष्टि करता है ।

निष्कर्ष यह है कि जीवात्मा स्थूलशरीरका नहीं है; वह तो उससे पृथक् सत्ता रखता है । स्थूल विन शील शरीरमें रहता हुआ भी वह अविनाशी तत्त्व है ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिदूत बने

(लेखक—पं० श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

इतिहास इसका साक्षी है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्रान्तिद्वारा ही धर्मकी स्थापना और अधर्मका नाश करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे और अन्याय—अत्याचार करनेवाले दुष्ट राजाओंको मिटाकर उन्होंने सुराज्यकी स्थापना की। पर क्रान्तिकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सर्वत्र क्रान्तिका ही प्रयोग नहीं किया; प्रत्युत् शान्तिका भी अवलम्बन लिया। अज्ञातवास समाप्त करके पाण्डव जब वापस आये तो उनके सम्मुख जीवन-संचालनकी समस्या उत्पन्न हुई। कुलपरम्परा-के अनुसार पाण्डवोंको आधा राज्य मिलना चाहिये था। पाण्डव धर्मके पोषक थे, सदाचारी थे; किंतु वीर थे, योद्धा थे। दुष्ट दुर्योधन उनकी वीरतासे परिचित भी और अपरिचित भी था। उसे घमंड था। अपने दुष्ट साथियोंपर भरोसा था। महाराज धृतराष्ट्र ज्ञानी थे। उन्हें पाण्डवोंकी शक्तिका पता था। वे यह भी जानते थे–'जहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हैं, जहाँ वीरवर धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं 'विजय' भी है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनके सखा हैं अतः पाण्डवोंकी विजय भी निश्चित है।' धृतराष्ट्रने यह समझ लिया था कि पाण्डवोंको उनका अधिकार मिलना चाहिये। दुर्योधनने अहंकार और अपने साथियोंके बहकावेमें आकर पाण्डवोंको कुछ भी देना नहीं चाहा। अवसरके औचित्यको समझकर राजनीतिज्ञ महाराज धृतराष्ट्रने संजय-को पाण्डवोंकी भावना जाननेके लिये भेजा। संजय पाण्डवों-के पास पहुँचकर, उनकी भावना समझकर वापस आ गये। इधर पाण्डवोंकी भावनासे राजनीतिज्ञ राजा धृतराष्ट्रको निराशा हुई। निराशा होनेका एकमात्र कारण था दुर्योधनका हठ। धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके अनुचित स्नेहमें पड़कर पाण्डवों-को राज्यसे वञ्चित भी रखना चाहते थे।

संजयके वापस चले जानेपर इधर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे सलाह ली। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें प्रत्येक भाईसे विचार-विमर्श किया। सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि दुर्योधनको समझाने और भविष्यमें होनेवाले युद्ध-को बचानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं 'शान्तिदूत' बनकर महाराज धृतराष्ट्रके पास जायँ। भगवान्‌की यह सलाह उत्तम जान पड़ी। वीर पाण्डव केवल पाँच गाँव लेकर ही अपना जीवन यापन करना चाहते थे। भगवान्‌ने भी शान्ति-दूत बनकर कौरव-सभामें जानेका निर्णय कर लिया। जब भगवान्‌ने कौरवोंको समझानेके लिये हस्तिनापुर जानेका निर्णय कर लिया, तब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रसे अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा—'मित्रवत्सल श्रीकृष्ण! मित्रोंकी सहायताके लिये यही उपयुक्त अवसर आया है। मैं आपके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता जो इस विपत्तिसे हमलोगोंकी उद्धार कर सके। राजा धृतराष्ट्र-को राज्यका बड़ा लोभ है। उनके मनमें पाप बस गया है। अतः वे अपने अनुरूप व्यवहार न करके राज्य दिये विना ही हमारे साथ संधिका मार्ग ढूँढ़ रहे हैं, मधुसूदन! मैंने केवल पाँच गाँव ही माँगे थे। नीच दुर्योधन उसे भी नहीं स्वीकार कर रहा है। इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या हो सकती है? हमलोग किसी भी न्यायसे अपनी पैतृक सम्पत्तिका परित्याग करनेके योग्य नहीं हैं। इसके लिये प्रयत्न करते हुए यदि हमलोगोंका वध हो जाय तो वह भी श्रेयस्कर है। माधव! इस विषयमें हमारा ध्येय यही है कि हम और कौरव आपसमें संधि करके शान्तभावसे रहकर उस सम्पत्तिका समान रूपसे उपभोग करें। हमलोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं और न तो कुलके विनाशकी इच्छा ही रखते हैं। यदि नम्रता दिखानेसे भी शान्ति हो जाय तो वही सबसे बढ़कर है। ऐसे समयमें आप क्या उचित समझते हैं? हम कैसा बर्ताव करें, जिससे हमें अर्थ और धनसे वञ्चित होना न पड़े।'

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरका मन्तव्य समझकर बोले—'मैं दोनों पक्षोंके हितके लिये कौरवोंकी सभामें जाऊँगा, वहाँ पहुँचकर आपके लाभमें, किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचाते हुए, यदि मैं दोनों पक्षोंमें, संधि करा सका तो समझूँगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक एवं बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो गया। ऐसा करनेपर एक दूसरेके प्रति, रोषमें भरे हुए इन कौरवों एवं सृंजयों और पाण्डवोंको मृत्युके मुखसे बचा लूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विचारोंको समझकर युधिष्ठिर पुनः बोले—'भगवन्! मेरी यह भावना नहीं कि कौरवों-के पास आप 'शान्तिदूत' बनकर जायँ? यदि दुष्ट दुर्योधन द्रोहवश आपके साथ कोई अनुचित बर्ताव कर बैठा

तो हमारे लिये कष्टकी बात होगी।' युधिष्ठिरको आश्वासन देते हुए और सर्वप्रकारसे विश्वास दिलाते हुए भगवान्‌ने गम्भीर होकर कहा—'राजन् ! दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। वहाँ जाकर संधि-प्रस्ताव करनेसे हमारी प्रतिष्ठामें आँच नहीं आयेगी। सम्पूर्ण देशके राजाओंकी दृष्टिमें हम सब निन्दाके पात्र नहीं बन सकेंगे। मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक न होगा। सम्भव है वहाँ जानेसे कार्यकी सिद्धि हो जाय। यदि काम न बना तो भी हम सब निन्दासे अवश्य बच जायँगे।' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भूत, भविष्यके द्रष्टा हैं, वर्तमानके निर्माता हैं। जगद्गुरु हैं। जगत्-स्रष्टा हैं। लोकपरम्पराकी रक्षाके लिये महासंहारकी ज्वालासे दोनों पक्षोंको बचानेके लिये उन्होंने शान्तिदूत बनकर अपने मान-सम्मानको तिलाञ्जलि देकर संसारके सम्मुख एक महान् आदर्श उदाहरण उपस्थित किया। आज भी बुद्धिमान् और मानव-हितेच्छु राष्ट्र संघर्षकी स्थितिको वार्ताद्वारा ही सुलझाना श्रेयस्कर समझ रहे हैं। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्‌का वह प्रयत्न स्तुत्य था, मङ्गलकारी था, लोक-हितकारी था। भगवान्‌ने लोककल्याणके लिये ही वह आदर्श कार्य किया था। भगवान्‌को सब पता था। क्या होनेवाला है, उसे वे जानते थे, परंतु लोकपरम्पराकी रक्षा तथा एक आदर्श स्थापित करना उनको श्रेयस्कर जान पड़ा। भगवान्‌का दृढ़ निश्चय जानकर पुनः युधिष्ठिर बोल उठे—'प्रभो ! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें। आपका कल्याण हो, आप प्रसन्नतापूर्वक जाइये। मैं पुनः आपको अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करके यहाँ लौटा हुआ देखूँगा।' युधिष्ठिर एवं अन्य पाण्डवोंको धैर्य धारण कराते हुए, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कहना पड़ा—'राजन् ! कौरवोंका क्या अभिप्राय है, मैं इसे भी जानता हूँ। आपके विचारोंसे भी पूर्ण परिचित हूँ। आप धर्मात्मा हैं, धर्मका आश्रय लिये हुए हैं। बिना युद्ध किये जो कुछ मिल जाय, उसे आप लेकर संतोष करना चाहते हैं।'

भगवान्‌ने इस स्थलपर युधिष्ठिरकी संतोष-वृत्तिपर आक्षेप करना ही उचित समझा। भगवान्‌के विचारसे राजाओंको संतोष करना कायरताकी निशानी थी। भगवान् युधिष्ठिरमें सजगता, चेतनताके साथ क्षत्रियत्वको जगाते हुए पुनः बोले—'राजन् ! राज्यके प्रति क्षत्रियोंका स्वाभाविक धर्म संतोष नहीं है। सभी आश्रमोंके श्रेष्ठ पुरुषोंका यह कथन है कि क्षत्रियोंको भीख नहीं माँगनी चाहिये। क्षत्रियोंके लिये दीनता, कायरता प्रशंसाकी वस्तु नहीं है। शत्रुओंको संतोष देनेवाले महाराज ! आप पराक्रम दिखायें और शत्रुओंका संहार करें—

> नहि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर।
> विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परंतप॥

भगवान् श्रीकृष्णको भविष्यका पूरा ज्ञान था। वे सर्वज्ञ थे। इसी आधारपर उन्होंने युधिष्ठिरको बहुत पहले युद्धार्थ सावधान कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शान्तियात्रा जब निश्चित हो गयी, तब सहसा अपने खुले बालोंको हाथोंसे पकड़े द्रौपदी एकान्तमें आकर भगवान्‌के सम्मुख खड़ी हो गयी और बोली—'श्रीकृष्ण ! शत्रुओंके साथ संधिकी इच्छासे आप जो-जो कार्य अथवा प्रयत्न करें, उसके पूर्व दुष्ट दुःशासनके हाथों खींचे गये मेरे इन केशोंको याद रखियेगा। मैं यदि दुःशासनकी कटी बाँह भूमिमें लोटती न देखूँ तो मेरे हृदयको कैसे शान्ति मिलेगी? मेरे पतियोंका संधिप्रस्ताव मेरे हृदयमें बाणके समान लगा है।'

इतना कहकर द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख फूट-फूटकर रोने लगीं। द्रौपदीको रोते देखकर भगवान् श्रीकृष्णको कहना पड़ा—'कृष्णे ! तुम शीघ्र ही कौरववंशकी स्त्रियोंको इसी प्रकार रुदन करती हुई देखोगी। तुम जिनपर कुपित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी अपने पति, पुत्र, बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर इसी प्रकार रोयेंगी।' इस प्रकार सबको समझाकर उचित सान्त्वना देकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर पहुँचे। हस्तिनापुर पहुँचकर सर्वप्रथम भगवान्‌ने अपनी बूआ कुन्तीके दर्शन किये। कुन्तीने भगवान्‌को देखकर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा युधिष्ठिरको संदेश दिया—'बेटा युधिष्ठिर ! तुम धर्मात्मा हो, तुम्हारे (क्षत्रिय) धर्मकी बड़ी हानि हो रही है।' पुनः कुन्तीने भगवान्‌से कहा—'कृष्ण ! मेरे अन्य पुत्रोंसे भी कहना—'बेटा ! क्षत्राणी जिस प्रयोजनके लिये बेटोंको उत्पन्न करती है, उसे पूरा करनेका यह समय आ गया है।' अपने पुत्रोंको संदेश देनेके बाद माता कुन्तीने अपने परमप्रिय हितैषी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'मधुसूदन ! राज्य छिन गया—इसका मुझे दुःख नहीं, मेरे पुत्रोंकी जुएमें हार हुई, या मेरे बेटे वनमें चले गये, इसका भी मुझे दुःख नहीं, परंतु मेरी एकवस्त्रा पुत्रवधू कृष्णाको रजस्वला-अवस्थामें बलपूर्वक भरी सभामें ले जाकर जो

अपमानित किया गया, इससे बढ़कर दुःखकी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है ?' अपनी बूआ कुन्तीको भी आश्वासन देते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—'बूआजी ! तुम शीघ्र ही देखोगी कि पाण्डव स्वस्थ अवस्थामें तुम्हारे सामने उपस्थित हैं । उनके सब मनोरथ सिद्ध हो गये और वे अपने शत्रुओंका संहार करके, साम्राज्य और लक्ष्मीसे पूर्ण होकर जगत्के सर्वश्रेष्ठ शासक-पदपर प्रतिष्ठित होंगे ।'

इस प्रकार अपनी बूआको समझाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आगे बढ़े । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दुर्योधनके भवनमें पहुँचे । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अकेले आया देखकर दुर्योधनको आश्चर्य हुआ और उनके स्वागतमें वह उठ खड़ा हुआ । यथोचित सत्कारके बाद दुर्योधनने भगवान् श्रीकृष्णको अपने यहाँ भोजनके लिये निमन्त्रित किया । भगवान् शान्तिदूत बनकर पाण्डवोंकी ओरसे गये थे । भगवान्ने दुर्योधनके निमन्त्रणको अस्वीकार कर दिया । जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे निमन्त्रण अस्वीकार करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने स्पष्ट कहा—'दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होनेपर ही भोजन एवं आदर स्वीकार करते हैं । अतः मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जानेपर ही मैं ऐसा करूँगा । दुर्योधन ! ऐसी स्थिति हो जानेपर ऐसा प्रयत्न करें ।'

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह ।
कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥

भगवान्की वह नीति दुर्योधनको अच्छी न लगी । उसने पुनः कहा—'भगवन् ! आपका उद्देश्य सफल हो अथवा न हो, हमारे यहाँ भोजन करनेमें आपको क्या अड़चन है ?' इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा—'राजन् ! मैं काम-क्रोधसे द्वेषवश अपने स्वार्थके लिये अथवा किसी प्रकारका बदला लेनेके लिये, या किसी प्रकार बहाना करके धर्मका त्याग नहीं करना चाहता । किसीके घरका अन्न या तो प्रेमके कारण ग्रहण किया जाता है, या भूखों मरनेपर । इस समय आपका प्रेम तो प्रकट नहीं हो रहा है और मैं भूखों नहीं मर रहा हूँ ।' दुर्योधनके पास भगवान्के इस सत्य कथनका कोई उत्तर नहीं था, वह चुप हो गया ! भगवान्ने दुर्योधनके घर भोजन नहीं किया ।

अपना पक्ष और मन्तव्य दुर्योधनको समझाते हुए भगवान्ने कह दिया—'दुर्योधन ! जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है ।' अपनी भावना और मन्तव्यको व्यक्त करके भगवान् विदुरके घर पहुँचे और उन्होंने वहीं भोजन किया ।

अपने मनकी बात विदुरको बतलाते हुए भगवान्ने विदुरसे कहा—'विदुर ! अपने मित्रको किसी व्यसन या विपत्तिमें फँसा देखकर यथाशक्ति उसे समझा-बुझाकर उसका उद्धार करना चाहिये । जो व्यक्ति अपने मित्रको शुभ परामर्श देकर उसका हित नहीं करता, उसे विद्वान् निर्दय और क्रूर मानते हैं । जो अपने मित्रकी चोटी पकड़कर उसे बुरे कामोंसे विरत करता, वही प्रशंसनीय है । मैं तो निष्कपट भावसे धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवों तथा भूमण्डलके अन्यान्य राजाओंके हितका ही प्रयत्न करूँगा । इसपर भी दुर्योधन यदि मुझपर शङ्का करेगा तो भी मेरे मनको प्रसन्नता ही होगी ।'

तदनन्तर भगवान्ने धृतराष्ट्रको भयानक युद्धसे विमुख करने और पाण्डवोंसे संधि कर लेनेके लिये समझाया और धृतराष्ट्रको भगवान्की बात मङ्गलकारी और रुचिकर भी प्रतीत हुई । भगवान्ने दुर्योधनसे शान्तिप्रयत्नको मानने और संधि कर लेनेके लिये समझाया । दुर्योधनको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भी बात मान्य नहीं हुई । दुर्योधनने रुष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'केशव ! आपको भलीभाँति विचार करके बोलना चाहिये । आप तो पाण्डवोंके प्रेमकी दोहाई देकर उल्टी-सीधी बातें करते हुए मुझे दोषी ठहरा रहे हैं । पाण्डव अपनी इच्छासे जुआ खेलनेमें तत्पर हुए और मामा शकुनिके प्रयत्नसे वे हार गये । इसमें मेरा क्या दोष ? हम जानते हैं कि पाण्डवोंमें सामना करनेकी शक्ति नहीं है । फिर भी बड़े उत्साहसे वे वैर ठान रहे हैं । मेरे पिताजी भी मुझे राज्य दे चुके हैं । उसे मेरे जीवित रहते कोई नहीं ले सकता । जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक पाण्डवोंको इतनी भूमि भी नहीं दे सकता जितनी कि एक सूईकी नोकसे छिद सकती है ।' दुर्योधनकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधका स्वाँग भरकर दुर्योधनको सावधान करते हुए बोले—'दुर्योधन ! सावधान हो जा, बहुत बड़ा नरसंहार होनेवाला है । मूर्ख !

तू जो ऐसा मानता है कि पाण्डवोंके प्रति मेरा (दुर्योधनका) कोई अपराध ही नहीं है, यह असत्य है। तूने पाण्डवोंके लिये अनेकों काण्ड रचाये। वारणावत नगरमें कुन्तीसहित पाँचों पाण्डवोंको जलानेका तूने ही असफल प्रयत्न किया था। भीमको विष पिलाकर जलाशयमें फेंक दिया था। पाण्डवोंकी समृद्धिसे संतप्त होकर ही तूने पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिये आमन्त्रित किया था। अपने मामा शकुनिकी अनुचित जालसाजीसे पाण्डवोंको जुएमें धोखेसे हराया था। तूने और तेरे भाइयोंने सती द्रौपदीके साथ जो बर्ताव किया था, क्या कभी वह क्षम्य हो सकता है? इन समस्त कलुषित कर्मोंद्वारा तूने पाण्डवोंको मार डालनेका प्रयत्न किया; परंतु तेरे सभी प्रयत्न असफल रहे।' भगवान् कृष्ण-चन्द्रकी बातें दुर्योधनको अच्छी न लगीं। दुःशासनके संकेतपर दुर्योधन सभासे उठकर महलमें चला गया।

दुर्योधनके चले जानेपर भीष्मने भगवान्‌से कहा—'भगवन्! राजा धृतराष्ट्रका यह दुष्ट पुत्र दुर्योधन अपने समस्त साथी राजाओं और भाइयोंके साथ मृत्युके मुँहमें जाना चाहता है।' भगवान्‌ने भी भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि समस्त बड़े-बूढ़ोंको सावधान करते हुए कहा—'कुरुवंशके बड़े-बूढ़ोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है कि आप सब इस दुष्ट दुर्योधनको राजाके पदपर बैठाकर इसके ऊपर नियन्त्रण नहीं कर रहे हैं। कौरवो! अब मैंने समयोचित कर्तव्यका निर्णय कर लिया है। इसको पालन करनेपर सबका भला होगा।' भगवान्‌ने एक नीतिकी बात समझाते हुए कहा—'समस्त कुल-की रक्षाके लिये एक पुरुषको और एक गाँवके हितके लिये एक कुलको, जनपद (जिला) के लिये एक गाँवको त्याग देना चाहिये और आत्मरक्षार्थ संसारको त्याग दिया जा सकता है।' आप सबका कल्याण इसीमें है कि आप सब आगामी 'महाभारत' युद्ध न होने दें। यदि महाभारत हुआ तो कौरवोंका संहार होगा। अतः आप सब दुर्योधन और दुःशासनको बंदी बना लें और राज्य पाण्डवोंके हाथमें दे दें।' भगवान्‌की घोषणाके बाद गान्धारीने भी दुर्योधनको समझाया; किंतु दुर्योधनकी समझमें कुछ न आया। दुर्योधनने अपने मन्त्रियोंसे सलाह किया और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको, जो शान्तिदूत बनकर गये थे, बंदी बनाना चाहा। सात्यकिको दुर्योधनकी मन्त्रणाका पता चल गया। सात्यकिने उस दूषित योजनाका भण्डाफोड़ कर दिया। महात्मा विदुरसे नहीं रहा गया। उन्होंने धृतराष्ट्रको सावधान करते हुए कहा—'महाराज! आपके बेटे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बंदी बनाना चाहते हैं। अवश्य ही ये सब पतंगोंकी भाँति जल जाना चाहते हैं।' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन्! ये दुष्ट कौरव यदि कुपित होकर मुझे पकड़ना चाहते हैं तो आप इन्हें आज्ञा दे दें। आप देखें कि ये मुझे बंदी बनायेंगे या मैं ही इन्हें पकड़ लेता हूँ। मैं इस समय इन्हें बाँध लेनेकी शक्ति रखता हूँ। पर इस समय ऐसा निन्दित कर्म मैं नहीं करना चाहता। मैं शान्तिका संदेश लेकर 'शान्तिदूत' बनकर आया हूँ। आपके पुत्र राज्य और धनके लोभी हो गये हैं। इन्हें अब धन और प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ेगा। यदि ये ऐसा ही चाहते हैं तो युधिष्ठिरका कार्य सम्पन्न हो गया। राजन्! मैं आपके समीप क्रोध या अमर्षका कार्य नहीं करना चाहता' भगवान्‌के संकेतपर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः दुर्योधनको बुलवाया। दुर्योधनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—'दुष्ट! तू जो मुझे अकेला और निर्बल समझता है, यह तेरी भूल है।' इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने 'विराट् स्वरूप' को वहीं प्रकट कर दिया। भगवान्‌के विराट् स्वरूपको देखते ही कौरवोंकी आँखें बंद हो गयीं। भगवान्‌की कृपासे केवल अन्धे धृतराष्ट्रने अन्तश्चक्षुसे भगवान्‌के विराट् स्वरूपको देखा और समझा। अपना विराट् रूप दिखलाकर कौरवोंको चकित और भयभीत कर भगवान् कौरवसभासे दहाड़ते हुए चल दिये। इस प्रकार लीलामय भगवान्‌का 'शान्तिप्रयास' असफल हो गया। भगवान् इसे पहलेसेही जानते थे। अन्ततोगत्वा दुष्टोंके वधके लिये भगवान्‌ने अर्जुनको गीताका उपदेश देकर उन्हें 'कर्मयोग' की ओर अग्रसर किया।

कथा

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'कृपया जो जहाँ हैं, वहीं बैठ जायँ ! आगे आनेका प्रयत्न न करें !'

बार-बार यह घोषणा होती थी और यह आवश्यक भी है; क्योंकि श्रद्धाके आवेगमें लोग व्यासपीठतक पहुँचकर वक्ताको स्वयं पुष्प, पुष्पमाला चढ़ाना, अपनी भेंट व्यासपीठपर अर्पित करना और कुछ न हो तो वक्ताको समीप जाकर प्रणाम करना आवश्यक मानते हैं।

'पुण्य लूटनेके प्रयत्नमें पाप मत कीजिये ! आप कथामें बाधक बनेंगे तो पाप होगा। आप दूसरोंको धक्का देते, पैरसे स्पर्श करते आगे आयेंगे तो पाप होगा।' बीच-बीचमें जब आवश्यक लगता, वक्ता स्वयं भी यह घोषणा कर देते थे।

व्यासपीठतक पहुँचने, वक्ताको प्रणाम करने, वहाँ भेंट या पुष्प चढ़ानेके आवेशमें लोग देखते ही नहीं कि उनके इस प्रयत्नसे कथा-प्रवचनमें बाधा पड़ती है। दूसरोंको धक्का देते, कुचलते आगे बढ़ना भी दोष है, यह वे समझना ही नहीं चाहते।

कुछ लोग आवश्यकतासे अधिक चतुर होते हैं। चतुर वे अपनेको मानते हैं, केवल इसलिये चतुर; अन्यथा ऐसी चतुराई तो अज्ञता है। जिससे अपनी हानि हो, उसे चतुराई कोई कहे, उसको क्या कहा जाय ? कथामें, मन्दिरमें आप किसी छल-बलसे आगे पहुँच गये—ठीक है कि दर्शन, श्रवणकी सुविधा अधिक मिली; किंतु सात्त्विकता प्रथम ही नष्ट हो गयी और दूसरोंको वञ्चित करनेका पाप ले आये यह अलग। जहाँ गये थे पुण्य प्राप्त करने, वहाँसे क्या लाये ?

थोड़ेसे पुष्प, एकाध माला या दो फल लेकर इसलिये भी लोग कथा-प्रवचनमें जाते हैं कि पीछे पहुँचनेपर भी उसे चढ़ाने भीड़मेंसे आगे व्यासपीठतक पहुँच जायँ और तब वहीं धक्का-धुक्की करके बैठ सकें।

'आप प्रणाम करेंगे, माला-पुष्प या और कुछ चढ़ायेंगे बड़ी कृपा आपकी ! आपका प्रसाद मेरे मस्तकपर; किंतु अभी नहीं।' वक्ताने सब चतुराइयोंका द्वार बंद कर दिया था। वे कह रहे थे—'कथा-समाप्तिके पश्चात् मैं थोड़ी देर बैठा रहूँगा यहाँ। आप उस समय यह सब कर सकते हैं। अभी जहाँ हैं, वहीं बैठकर श्रवण करें।'

'कोई रुपये-पैसे नहीं चढ़ायेगा। आप फल-मेवे-मिठाई व्यासपीठपर चढ़ा सकते हैं; किंतु यह जानकर चढ़ाइये कि उसे हम सबमें ही बाँट दिया जायगा। व्यासपीठपर चढ़ायी गयी कोई वस्तु, कोई वस्त्र, कोई धन वक्ता स्वीकार नहीं करते। वे उसमेंसे कुछ नहीं लेंगे !' कथाकी समाप्तिके साथ ही यह घोषणा की गयी और कई बार की गयी।

'कथापर चढ़ी कोई वस्तु नहीं लेते ?' बड़ा अद्भुत लगा। ऐसा कथावाचक कथा ही क्यों करता है ?

बहुत कम ऐसी कथा सुननेको मिलती है। बड़ा हृदयग्राही प्रवचन था। बड़ी मार्मिक व्याख्या की गयी थी। श्रीमद्भागवतके श्लोककी कथा सुनकर ही वक्तामें श्रद्धा हो गयी थी। वे कुछ लेंगे नहीं कथापर चढ़े पदार्थोंमेंसे, यह जानकर श्रद्धा विशेष पुष्ट हुई।

'इनसे पृथक् मिलना है !' मनमें निश्चय करके उस समय उठ आया। लोग उनकी पद-वन्दना करने, उन्हें माला पहिनाने व्यासपीठके समीप भीड़ किये थे। ऐसे भम्भड़में प्रवेश करना मुझे प्रिय नहीं है। यह अपने और दूसरोंके लिये—प्रणम्यके लिये भी सुविधाजनक नहीं है। वह भी तो भीड़से छुटकारेको ही उत्सुक होगा।

× × ×

'मैं कल कथामें आया था।' उनके ठहरनेके स्थानपर मैं गया तो वहाँ एकान्त नहीं था। एकान्तकी न सम्भावना लेकर गया था और न मुझे कोई गोपनीय चर्चा करनी थी। दस-बारह लोग बैठे थे। चरण-वन्दन करके एक ओर बैठते हुए मैंने कहा।

'बड़ी सुन्दर कथा लगी। ऐसी कथा कम सुननेको मिलती है। मैं बहुत बड़ा विद्वान् और अत्यन्त निपुण कथावाचक हूँ। है न ?' मैं हतप्रभ हो गया उनके मुखसे यह सुनकर और वे खुलकर हँस रहे थे।

'केवल विद्वान् होनेसे…'

'ऐसी कथा नहीं की जा सकती।' उन्होंने मुझे फिर नहीं बोलने दिया। 'मैं भक्त हूँ। आत्मसाक्षात्कार-सम्पन्न हूँ। अनुभवी हूँ। भगवद्दर्शन मुझे हुए हैं। अनेक चमत्कार मुझमें हैं। क्यों ?'

मैं क्या उत्तर देता । मैंने संकोचसे सिर झुका लिया ।

'मैं विद्वान् हूँ और बहुत अच्छी कथा कहता हूँ, यह सत्य मुझसे अविदित नहीं है ।' उन्होंने हँसते हुए कहा । 'मैं ईमानदारीसे पूरा श्रम करता रहा हूँ और अब भी करता हूँ । कथामें जानेसे पूर्व उस श्लोकपर जो टीकाएँ, उत्प्रेक्षाएँ तथा अन्य उपलब्ध साहित्य है, वह पूर्व पठित होनेपर भी एक बार देखकर जाता हूँ । जो श्रम करता है, उसे अपनी सफलताका ज्ञान रहे, यह अस्वाभाविक कहाँ है ।'

'वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।'

दो क्षण रुककर बोले—'यह तो मेरे समीप है; किंतु भावुकतामें मत बहिये ! इसमें भक्ति, भगवद्दर्शन, आत्म-साक्षात्कार या चमत्कार कहाँ आता है कि उसे आप मुझमें आरोपित करते हैं !'

'जो सूक्ष्म व्याख्या आपने की···'

'वह एक अनुभवी ही कर सकता है ।' फिर उन्होंने मुझे बोलने नहीं दिया । 'वे बातें आपने सुन तो ली ही हैं । अब दूसरोंसे आप उन्हें कहेंगे तो आप भी अनुभवी हुए । इतना भोलापन अच्छा नहीं । वे बातें कही अनुभवी महापुरुषोंने ही हैं, यह ठीक है; किंतु मैं उनके ग्रन्थोंसे उन्हें पढ़कर क्यों जान नहीं सकता ? मैं तो उनकी बातें दुहरानेवाला ही हूँ ।'

'आप कथा क्यों करते हैं !' प्रश्न इतना अटपटा था कि मुखसे निकलनेके पश्चात् स्वयं मुझे संकोच हुआ ।

'यह मेरा साधन है ।' वे बहुत गम्भीर हो गये । 'मेरी कुलपरम्परा कथा-वाचकोंकी है । बहुत छोटा था, तबसे मुझे यह कार्य सिखलाया गया । पहले यह कार्य आजीविका-के रूपमें मैंने अपनाया और अब भी यही मेरी आजीविका है ।'

'आप कथापर चढ़ा तो कुछ लेते नहीं ।'

'हाँ, मैं कथा-विक्रय नहीं करता ।' वे बोले । 'कुछ दक्षिणा निश्चित करके कथा-प्रवचनकी बात तो कभी कल्पना-में भी नहीं आयी थी । लोग ऐसा भी करते हैं, सुना तो बड़ा क्लेश हुआ । पहले ग्रन्थपर चढ़ौती होती थी । जब समझ आयी, इस कथाको ही जबसे साधन बनाया । कैसे सम्भव है कि मैं अपना साधन ही बेच दूँ ।'

'तब कथासे आजीविका ?'

'सो तो चलती ही है ।' वे कह रहे थे । 'अन्तर यह अवश्य पड़ गया है कि ग्रन्थपर लोग पुण्यबुद्धिसे जो यथाशक्य अधिक दक्षिणा चढ़ाते हैं, वह नहीं मिलती; किंतु बहुतसे श्रोता व्यक्तिगतरूपसे कुछ दे जाते हैं । पर्याप्त है वह मेरे लिये ।'

'कथाको आपने साधन बनाया है ।'

'हाँ—केवल आजीविकाका साधन बनाकर चला था बचपनमें, अब यही मेरा आध्यात्मिक साधन भी है ।' वे सीधे बैठ गये और स्थिर दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए बोले-'कथा-श्रवण साधन है, यह तो आप-जैसे सत्संगीको बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । श्रोता भगवत्कथा सुनता है, तब उसका मन भगवच्चरित्रमें लगता है । वक्ताको अध्ययन करना पड़ता है, बहुत कुछ स्मरण रखना पड़ता है और सुनाना पड़ता है । उसे मनको कहीं अधिक लगाना पड़ता है ।'

'इससे पूर्व भी मैं कथा-वाचकोंके सम्पर्कमें आया हूँ ।' मैंने तनिक विरक्त स्वरमें कहा ।

'उनकी कुछ समस्याएँ हैं ।' वे गम्भीर बने रहे । 'जिसे सदा ही नवीन स्थान नवीन लोगोंमें रहना है, वह अपनी आवश्यकताओंके प्रति संकोची नहीं रह सकता । उसे कुछ माँगने—आज्ञा देने, हठतक करनेमें संकोच नहीं होता । परिस्थिति उसे निःसंकोच—कह सकते हैं कि स्वार्थी बना देती है । अपनी सुविधा ही उसे प्रधान जान पड़ती है । कितने लोग हैं जो यात्रामें दूसरेकी सुविधापर ध्यान दे पाते हैं ?'

मैं कुछ बोला नहीं; किंतु स्पष्ट था कि मुझे इस उत्तरसे कोई संतोष नहीं हुआ । 'आजकल फैशन हो गया है आत्मस्वीकृतिका—मैं इसे बुरा समझता हूँ; किंतु त्याग नहीं पाता । मेरी दुर्बलता है ।' दुर्बलता है तो सिर पटको और छोड़ो, अथवा उपदेश, कथा बंद करो । अपने सार्वजनिक जीवनका त्याग करो । तुम्हारा जीवन जितना सार्वजनिक—व्यापक होगा, तुम्हारी दुर्बलता भी उतनी व्यापक होगी ।

जो त्याग-वैराग्यका उपदेश करते हैं, उनकी दृष्टि पैसे-पर ही टिकी रहे, जो अमानी होनेका उपदेश करें वे मञ्चपर बैठकर तनिकसे अपमानकी गन्धसे वे लाल हो उठें, जो ज्ञान-भक्तिकी लम्बी-चौड़ी व्याख्या करें, वे अत्यन्त देहासक्त, स्वसुख-परायण पाये जायँ—ऐसे लोगोंको उपदेशक, कथा-वाचक बननेका अधिकार है ? रामराज्य होता, हो पाता, ये उपदेशक पूजित होते या कारागारमें होते ? श्रीबलरामने

कथावाचक सूत रोमहर्षणको मार दिया था। उस समय वह घटना भ्रमवश हुई; किंतु उसके पीछे जो तथ्य है, वह तो भ्रम नहीं है। उन्होंने कहा था—

'वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः।'

मैंने यह सब कहा नहीं। लेकिन मेरे मनमें ये बातें अवश्य आयीं। मेरे मुखपर वितृष्णाके भाव आये हों तो आश्चर्य नहीं है।

'तुम्हारा आक्रोश उचित है।' वे बोले। 'ऐसा आक्रोश आजके युवकोंमें है और मैं इसे शुभ लक्षण मानता हूँ।'

'जो यश या धनके लिये भगवत्कथाका आश्रय लेते हैं, उन्हें इस कल्पवृक्षसे वह प्राप्त होता है।' वे गम्भीर बने रहे। 'वे केवल दूसरोंको सुनानेके लिये पढ़ते, स्मरण करते हैं। उनका पठन-स्मरण सुना देनेके लिये है। वे तो रिकार्ड हैं। रिकार्ड कुछ भी बजे, उससे यन्त्रकी स्वच्छता तो नहीं होती, उनका पठन-स्मरण उनके अपने चित्तको स्पर्श नहीं करता। वे तो त्याग, सेवा, तप, भक्ति, ज्ञानादिकी बातोंको केवल सुनानेकी बातें मानते हैं।'

'केवल सुनाना भी बुरा नहीं है। मैं भी केवल सुनाता ही हूँ।' तनिक हँसकर वे फिर गम्भीर हो गये। 'बात इतनी है कि मैं किसी सेठ, साहूकार, मन्त्री, पदाधिकारी बाबूजीको कुछ सुनानेमें उत्साह नहीं रखता। कथाके लिये जाना है, इस बातके मनमें आते ही आता है कि जिसकी कथा सुनानी है, वही बुला रहा है। वह नाना रूप, नाना वेश धारण करके बैठेगा सुननेके लिये। उसे अपनी कथा सुननेमें रस आता है। उसे सुनाना है, अतः श्रम करो! पूरी योग्यतासे सुनाओ!'

मैंने उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा। अब उनसे कुछ कहनेके लिये मेरे समीप कोई शब्द नहीं था।

केवल भक्तिका पंथ ही सीधा

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)

सर्व-समर्थ-गुरु श्रीरामदासस्वामीने अपने मनको केवल भक्तिके मार्गपर जानेकी ही सलाह दी है। उन्होंने कहा है—

'मना, सज्जना, भक्ति-पंथेचि जावें।'

'हे सज्जन मन! तू केवल भक्तिके मार्गपर ही चल; क्योंकि वही सीधा और सुविधाजनक है। सीधे-सादे साधु-मार्गपर चलनेसे ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। जो सीधा-सादा मन रखता है उसे ही सीधे खड़े रह सकनेकी शक्ति प्राप्त होती है। सीधा मनुष्य ही खड़ा रह सकता है। पशु-पक्षी आड़े-टेढ़े इसीलिये हुए कि उन्होंने पहले सीधा-सादा भक्तिका मार्ग छोड़कर आड़ा-अँवला, टेढ़ामेढ़ा, बाँकाचूका अन्य अभिमानका रास्ता पकड़ा। तिर्यक् मार्गसे—तिरछे रास्तेसे चलनेका परिणाम होता है 'तिर्यञ्चगति'—मनको सीधे भक्तिमार्गपर चलानेसे मनुज-गति और विपरीत मार्गपर चलनेसे वनस्पतियोनियोंमें विपरीत गति प्राप्त होती है। विपरीत चले इसलिये ऊपर पैर और नीचे सिर—ऐसी स्थावर योनियाँ प्राप्त होती हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

भगति के साधन कहहुँ बखानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥

उस सुगम पंथपर कैसे चला जा सकता है—इसके साधन भगवान्‌ने अपने श्रीमुखारविन्दसे प्रकट किये हैं—

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी प्रभुसे यही प्रार्थना की थी कि—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु उर सो राउर निज गेहु॥

भक्ति-पंथमें सबसे पहले ब्राह्मणोंके चरणमें अत्यन्त प्रेम होना जरूरी है, जिससे अपने-अपने कर्तव्यकर्मोंको वेदानुकूल रीतिसे निर्वाह करके विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय। आज

अपने-अपने कर्मोंमें संकर-दोष आ जानेसे और ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति कम होनेसे विषयवासना बढ़ गयी है। सभी तरहके लोग संस्कृति, सत्ता और सम्पत्तिपर अपना-अपना अधिकार चलाने लग गये और सेवा-धर्म जो परम गहन था—योगियोंके लिये भी अगम्य माना जाता था, उसे चारों वर्णोंके आधारभूत 'शूद्र जातिने भी छोड़ दिया है—वे आज शूद्र (चरणोंके समान सर्वपूज्य) धर्मको छोड़कर क्षुद्र अभिमानी और भोगपरायण हो गये हैं। परस्पर अनुराग नष्ट हो गया है, इसीलिये विषयोंको लेकर तीव्र छीना-झपटी हो रही है। पहले पुण्यकर्मके उदयसे सर्वसम्मतिसे और ईश्वरकी कृपासे पुण्यात्मा पटरानीके पेटसे राजा निकलता था—अब लाखों-करोड़ोंका व्यर्थ खर्च करके अहंकारके पापकर्मके उदयसे 'पेटी'मेंसे राजा निकलता है, जो 'पेटी' ही भरना चाहता है। चाहे प्रजाको 'पेट' पर पट्टी बाँधकर ही सोना पड़े। 'पेट'मेंसे निकलनेवाला राजा प्रजाके पेट-पालनका जिम्मेवार होता है और 'पेटी'मेंसे निकलनेवाला यह विचार करता है कि मेरी पेटी कैसे भरे ? और पेटी ज्यों ही भर जाती है कि उसका मुँह दुगुना हो जाता है। तृष्णाकी पेटी कभी भरती ही नहीं, अब प्रभु-चरणोंमें अनुराग कैसे पैदा हो ?

कामना, मद और दम्भ चारों ओर फैले हुए हैं। संतोंके चरणोंमें प्रेम कैसे हो ? प्रभुके प्रति स्वाभाविक स्नेहकी जाग्रति तो तभी होती है, जब सब इच्छाएँ छोड़कर भजन किया जाय। तभी प्रभुका अपने हृदय-कमलमें निवास सदाके लिये हो सकता है। 'राम' का निवास 'हराम'के खानेवाले मनमें कैसे हो ? उसका तो आराम ही हराम हो जाता है। कहा है—

आराम अगर चाहता है तो आ रामकी तरफ,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा दामकी तरफ।
आकर्षण अगर चाहता है तो आ कृष्णकी तरफ,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा व्यसनकी तरफ।
आनंद अगर चाहता है तो आ नंदजीके गाँव,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा द्वन्द्वहीके ठाँव।

आज परस्पर द्वन्द्व मचा हुआ है। गोपालन और गोकुल नंदगाँवकी चर्चा गँवारी मानी जाती है।

पर गोबरको धन जबतक नहीं माना जायगा, तबतक गोवर्धनधारी श्री—नटनागरकी कृपा नहीं होगी।

केवल भक्तिका ही पंथ सीधा है। कारण, हमारी पृथ्वी-माता भारतभूमि ट्रेक्टर नहीं माँगती, गोमूत्र ही माँगती है। जो ट्रेक्टरोंसे खेती करते हैं वे पृथ्वीमाताका खून चूसते हैं, दूध नहीं पीते। गोमाताकी भक्तिके बिना आर्थिक दशा नहीं सुधरेगी। फिर गोदानको ही अर्थ-दान मानना पड़ेगा। ब्राह्मणोंकी भक्तिके बिना वेदोंकी श्रद्धा उड़ जायगी और उत्तम कर्मोंका अभाव होगा। संतोंकी भक्तिके बिना संतोष नहीं होनेसे ईर्ष्या-बुद्धि बढ़ेगी और भगवद्भक्तिके बिना तो सब अँधेरा-ही-अँधेरा है। इसलिये नैष्ठिक ब्रह्मचारी समर्थगुरु रामदासजीकी बात मानकर केवल भक्ति-पंथसे ही चलना चाहिये।

रामहि केवल प्रेम पिआरा।
जानि लेहु जो जाननिहारा॥

'राम' को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाले हैं वे जान लें, केवल 'प्रेम' ही केवल आनन्दका साधन है। केवल 'ज्ञान'ही सत्यमुक्तिका साधन है, पर भक्तिके बिना ज्ञान आनन्द नहीं दे सकता। परमानन्दकी प्राप्ति तो केवल भक्तिसे ही हो सकती है।

भगवद्भक्तिरहित असत्‌का सङ्ग न करो

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः। अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥

जैसे प्राणहीन शरीरको गहने पहनाना केवल लोक दिखावा मात्र है, वैसे ही भगवान्‌की भक्तिसे रहित मनुष्यका ऊँची जातिमें जन्म, शास्त्रज्ञान, जप, तप सभी व्यर्थ है।

भगवद्भक्तिहीना ये मुख्यासन्तस्त एव हि। तेषां निष्ठा शुभा क्वापि न स्यात् सच्चरितैरपि॥
सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगोऽन्धवत्॥

जो भगवान्‌की भक्तिसे रहित हैं, वे ही मुख्यरूपसे असत् हैं। वे सच्चरित्र होनेपर भी उनकी कभी मङ्गलमयी निष्ठा ही नहीं होती है। असत् मनुष्य शिश्नोदरपरायण होते हैं। उनका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। अन्धा जैसे अन्धेके सङ्गसे अन्धकारमय कूपमें गिरता है, वैसे ही असत्‌के संसर्गसे अन्धतम नरकमें गिरना पड़ता है।

श्रीरामकी विशिष्टता

(लेखक—आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी)

एक दिन भगवत् श्रीजयदेव महाप्रभुके वंशज दार्शनिक सार्वभौम श्रीरामराय गोस्वामी प्रभु काशी पधारे। वहाँ आपके अनुपम चमत्कारके कारण काशिराजके मन्त्री श्रीमधुसूदन पोडवालने आपका आचार्याभिषेक कराया। नगरमें आपका यश फैल रहा था। वैशाखी पूर्णमासीको अनेक सेवकोंके साथ आपने श्रीगङ्गा-स्नान किया, श्रीगङ्गाजीके घाटपर आप सबसे कीर्तन करा रहे थे।

राधामाधव कुंजविहारी। मुरलीधर गोवर्द्धनधारी॥

कीर्तनकी तुमुल ध्वनिसे दो महापुरुष हँस रहे थे और वे थे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी तथा श्रीनाभास्वामीजी, एक श्रीरामचरितमानसके कर्ता, दूसरे श्रीभक्तमालके प्रणेता। आपसमें कहने लगे ये लोग श्रीवृन्दावनके निवासी हैं।

श्रीरामरायप्रभुजी यह सुनकर उनकी ओर झुक गये और कहने लगे कि क्योंजी!' श्रीवृन्दावनकी क्या चर्चा कर रहे हैं?' सैकड़ों लोगोंकी भीड़ हो गयी। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा, बैठिये तब बतावें। आसन देकर आपको बिठाया और कहा कि 'आपलोग श्रीराम-नामसे विरोध रखते हैं क्या जो एक बार भी श्रीराम-नामका कीर्तन नहीं करते?' अब तो प्रभुजीको बोलनेका अवसर मिल गया। आपने कहा कि 'महाराजजी! हमारे पूर्व-पुरुष—श्रीजयदेव महाप्रभुजीके आत्मज श्रीकृष्णदेवजी महाराजने श्रीराधामाधवाष्टक लिखा है, उसमें एक श्लोक दिया है—

राकारो राधिकानाम
मकारो माधवेङ्गितः।
राम नामा धाररूपः
श्रीराधामाधवो मम॥ (४)

अर्थात् श्रीराम-नाममें 'रा' अक्षर श्रीराधाजीका नाम है और 'म' अक्षरसे माधवका इशारा किया गया है, अतः राम-नामके भीतर श्रीराधा-माधवजी हमारे प्राण-धन होकर विराजमान हैं।

श्रीगोस्वामीजी और नाभाजी दोनों आपकी भावनासे प्रफुल्लित हो गये और श्रीनाभाजीने श्रीभक्तमालकी पूर्ति होनेपर भी श्रीप्रभुजीका छप्पय रचना करके लिख दिया।

(छप्पय)

विप्र सारस्वत बर जनम श्रीरामराय हरि रतिकरी॥
भक्ति ज्ञान बैराग योग अन्तरगति पागे।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सब त्यागे॥
कथा-कीर्तन मगन सदा आनँद रस झूले।
संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूले॥
वैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खिसि भूपरी॥
विप्र सारस्वत बर जनम श्रीरामराय हरि रतिकरी॥१९७॥

इस प्रकार श्रीप्रभुजीने श्रीरामनामकी अन्तरङ्ग-अवस्था-को सेव्य बताया।

देवी द्रौपदीका चीरदान और उनकी चीर-रक्षा

(लेखक—श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' काव्यतीर्थ, हि० सा० भूषण)

करुणावरुणालय भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कौरवसभामें भक्तिमती दीना द्रौपदीकी लज्जा-रक्षाकी मर्मस्पर्शी कथाएँ हम महाभारत एवं सत्काव्य ग्रन्थोंमें पढ़ते और सप्रेम सुनते तथा उस लीलामयके लोकोत्तर मधुर लीला-रसका पान करते अघाते नहीं हैं। 'न मे भक्तः प्रणश्यति' और 'हम भक्तनके भक्त हमारे' के अनुसार भगवान्के संरक्षणविधानमें कभी त्रुटि या देर नहीं होती। दीनकी एक ही पुकारपर वह दीनबन्धु दौड़ पड़ता है, नहीं, नहीं, वह सर्वव्यापक सहज कृपालु वहीं प्रकट हो जाता है। फिर यदि वह असहाया 'कृष्णा'की करुण पुकारपर उसका 'दस हजार गज बल थक्यो घट्यो न दस गज चीर' स्वयं बे-नजीर चीर बन गया तो आश्चर्य ही क्या ? किंतु उसके 'एकोऽहं बहु स्याम्' (एक होकर भी मैं बहु रूप हूँ)का भी रहस्य पूर्ण हेतु है और वह है उसीका 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (जो जिस प्रकार मुझे भजते या शरणापन्न होते हैं मैं भी उसी प्रकार उन्हें भजता या प्राप्त होता हूँ) श्रीमुखवचन। कतिपय भावुक भक्त कवियोंने हरिप्रीतिपरायणा पाञ्चालीके पटवर्धनका कारण—

> चोरि चोरि चीर जेते राखे व्रज बालनिके,
> जोरि जोरि तेते दिये द्रौपदीके पट में ॥

—बताया है; पर इसके सत्यस्वरूपकी एक मनोरम पौराणिक झाँकी और भी दर्शनीय है।

> **गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।**
> **गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥**

'गौएँ मेरे आगे हों, गौएँ मेरे पीछे हों, गौएँ मेरे दायें-बायें हों, इस तरह मैं गौओंके बीचमें ही निवास करूँ।' की भद्रभावनाको स्वयं कार्यरूपमें परिणत करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका यह गोप्रेम और गोपालन व्रजभूमितक ही सीमित नहीं वह द्वारकापुरीमें उनके द्वारकाधीश होनेपर भी भाँति बना रहा, उसमें तनिक भी त्रुटि या कभी नहीं होने पायी। घटना है, भगवान् गो एक दिन गौओंके लिये शङ्कुनिखनन (खूँटे गाड़ में रत थे कि दैवात् उनकी अँगुलियोंमें खरोंच जानेसे रक्त स्रवित होने लगा। कल्याणी (द्रौपदी) उन दिनों वहीं थी। श्रीरुक्मिणी-सत्यभा महारानियाँ भी वहाँ उपस्थित थीं। महारानियाँ प्र विक्षत अंगुलियोंमें पट्टी बाँधनेके निमित्त तदुप वस्त्र लाने रनिवासकी ओर दौड़ीं, तबतक करुणाक भगवती द्रौपदीने झट अपनी बहुमूल्य परिहित साड़ी अञ्चल फाड़कर प्रेमाश्रुओंसे भींगी पट्टी बाँध दी पाञ्चालीकी इस प्रेमप्रवणतापर रीझकर भगवा प्रसन्नताभरे स्वरमें कहा—'देवि ! तुमने आज अलौकिक प्रेममय कर्तव्यपाशमें मुझे बाँध लि मैं कौन-सा प्रतिदान देकर तुमसे उऋण हो सकूँ तुम जब भी याद करोगी कृष्णे ! कृष्ण तुम्हारी से सन्नद्ध रहेगा।'

अन्ततः वह समय आया जब कुरुराज दुर्योधन भरी सभामें एकवस्त्रा पाण्डव-पत्नी नग्न की जा थी। महाबली दुःशासन चीर खींचने लगा। अ द्रौपदीने भीष्मादि गुरुजनों तथा सभी सभ्य सभासदोंकी ओर करुणाविगलित दृष्टि डाली; प कहींसे कोई त्राणका समाधान न पाकर सर्वान्तर्या भगवान् गोपाल कृष्णकी टेर लगायी—

> गोविन्द द्वारकावासिन् गोपगोपीजनप्रिय।
> कौरवैः परिभूतां मां किन्न पश्यसि केशव॥

'हे गोविन्द, हे द्वारकावासिन्, हे गो गोपियोंके प्यारे, हे केशव ! कौरवोंद्वारा अपमानित हो हुई मुझे (भरी सभामें मेरी लुटती लाजको)

देखते नहीं ?' यहाँ गोविन्द, द्वारकावासिन् और केशवादि सम्बोधन सभी अर्थपूर्ण हैं। 'गोविन्द' और 'गोपगोपीजनप्रिय' गो-सुगाना द्रौपदीकी अवस्था (गोगुहार) को, 'द्वारकावासिन्' द्वारकामें घटित पूर्व घटना एवं भगवान्के रक्षापरक वचनका और 'केशव' द्रौपदीके केशाकर्षणपूर्वक बलात् सभामें लानेके सूचक हैं। द्रौपदीकी टेरमें देर भी न लगी कि भक्तभयहारी भगवान् भला कब चूकते ? 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' के प्रतिदानका अचूक समय जो उपस्थित था, हाजिर थे। साड़ीके अञ्चलके एक छोटेसे टुकड़ेके अर्पणस्वरूप स्वयं परिधान चीर अनन्त (साड़ीरूप) बन गये। दुःशासन खींचने लगा, पर साड़ियोंका अन्त नहीं आया। द्रौपदीके तनकी साड़ियोंका वहाँ अम्बर-सा लग गया। 'सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है' का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत हो गया। बलाभिमानी दुःशासनकी एक न चली, वह श्रान्त-क्लान्त होकर बैठ गया। यादवेन्द्रके इस अनूठे जादूसे सभी विस्मय-विमुग्ध थे। भक्त और भगवान्की जयध्वनिसे सभा-भवन गुञ्जित था। द्रौपदीकी रक्षा हुई। गोसेवानिरत गोपाल कृष्णकी सप्रेम तनिक-सी सेवाका यह कितना बड़ा पुरस्कार और पावनतम प्रतिदान था! धन्य श्रीकृष्ण और धन्य देवी कृष्णा।

धर्म-निरपेक्षता—एक पुनर्विचार

(लेखक—श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्० एस्-सी०, धर्मरत्न, साहित्य-रत्न, गांधी-साहित्याचार्य)

भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। हमारे संविधानमें समस्त नागरिकोंको विश्वास, धर्म और उपासनाकी स्वतन्त्रता दी गयी है। इस विशाल देशमें, जहाँ लगभग सभी धर्मोंके अनुयायी मिलते हैं, विभिन्न धर्मावलम्बियोंके सह अस्तित्वके लिये इस प्रकारकी स्वतन्त्रता आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी थी। अनेकतामें एकताके परिचायक—विभिन्न धर्म, विभिन्न संस्कृतियाँ, विभिन्न रीति-रिवाज, विभिन्न पूजा-पद्धतियाँ हमारे राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधक न बनें, अशान्ति न उत्पन्न हो और कोई भी व्यक्ति इस क्षेत्रमें दबाव, कुण्ठा एवं असंतोषका अनुभव न करे—यही विचार प्रमुख रूपसे धर्म-निरपेक्षताके पीछे था।

हम सदासे ही धार्मिक क्षेत्रमें सहिष्णु रहे हैं, असहिष्णुता प्रकट करनेवाले उद्धरण हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें नहीं मिलते। हमारा तो सिद्धान्त रहा है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'वासुदेवः सर्वमिति'

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

और फिर कण-कणमें प्रभुका दर्शन करनेवाला व्यक्ति असहिष्णु भी कैसे हो सकता है—

उमा जे रामचरन-रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध॥

ईश्वरमें पूर्णरूपसे विश्वास करनेवाला व्यक्ति कभी भी धार्मिक क्षेत्रमें असहिष्णु नहीं हो सकता।

मेरा वर्तमान विषय सहिष्णुता और असहिष्णुताकी व्याख्या करना नहीं है, वरं यह देखना है कि हम कहाँतक धर्म-निरपेक्षताको समझ सके हैं और कहाँतक उससे लाभान्वित हो सके हैं।

'धर्म वस्तुतः विशाल है, महान् है और असीम है; वह सर्वत्र है, पिताका पुत्रके प्रति दायित्व और पुत्रका पिताके प्रति कर्तव्य धर्मके अन्तर्गत है और उसकी विभिन्न पद्धतियाँ सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। धर्म आधारस्तम्भ है, जिसपर समाजका ढाँचा टिका रहता है, राष्ट्रका विशाल प्रासाद निर्मित रहता है और विश्वका गुरु भार आश्रित रहता है। समाज-धर्म और राष्ट्र-धर्मसे विमुख

नहीं हुआ जा सकता। धारण करनेवाली वस्तुको धर्म कहते हैं और इस प्रकार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, सदाचार, ब्रह्मचर्य आदि धर्मके अन्तर्गत आते हैं। धर्मके ये अङ्ग सभी धर्मोंमें, सभी सम्प्रदायोंमें समान रूपसे विद्यमान हैं, कोई भी धर्म असत्य-भाषण, हिंसा, चोरी, दुराचार आदिकी शिक्षा नहीं देता। इन मूलभूत तथ्योंको निकाल दिया जाय तो न समाज रह जायगा, न राष्ट्र; वे निराधार हो जायँगे; विशृङ्खलित हो जायँगे; व्यक्ति पूर्णतया स्वार्थी हो जायगा और मानवमें तथा पशुमें विशेष अन्तर नहीं रह जायगा।

धर्म-निरपेक्षता हमें धर्मसे विमुख होनेको नहीं कहती; हमें संकीर्णतासे ही विमुख होनेको कहती है।

क्या हम धर्म-निरपेक्षताके इस अर्थको समझ सके हैं?

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है; क्योंकि व्यक्तिके उत्थानपर ही राष्ट्रका उत्थान निर्भर करता है और व्यक्तिके उत्थानके लिये धर्म-निरपेक्षताका वास्तविक अर्थ समझना और उसका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ समय-पूर्व समाचार-समितियाँ बनायी गयी थीं; भ्रष्टाचार दूर करनेके लिये, सदाचार सिखानेके लिये—अशिक्षित व्यक्तियोंको नहीं, वरं उन सुशिक्षित एवं उच्चपदस्थ अधिकारियोंको, जो राष्ट्रके नायक हैं, उसकी प्रतिष्ठाके रक्षक हैं, उसके कर्णधार हैं।

अनेक शिक्षा-शास्त्री इस बातपर जोर दे रहे हैं कि विद्यार्थियोंको कुछ नैतिक और धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूपसे दी जाय।

कुछ समय पहले दिल्लीसे समाचार मिला था कि माता-पिता अपनी संतानोंके कार्यकलापोंसे चिन्तित हैं और कुछने सम्मिलित रूपसे सायंकाल कुछ युवक-युवतियोंको एकत्र करके धार्मिक चर्चा करना प्रारम्भ किया है।

ये तथ्य इस बातके द्योतक हैं कि हम धर्मनिरपेक्षताके वास्तविक अर्थको नहीं समझ सके हैं। भारत-जैसे आध्यात्मिक राष्ट्रमें सुशिक्षित व्यक्तियोंको सदाचार सिखानेके लिये समितियोंका निर्माण करना पड़े—इससे बढ़कर लज्जाकी और क्या बात होगी? इससे भी बड़े दुःखकी बात तो यह है कि इन समितियोंके द्वारा भी भ्रष्टाचारका उन्मूलन नहीं किया जा सका और अनेक निःस्वार्थसेवी कार्यकर्त्ता इस ओरसे उदासीन हो गये हैं।

हमारा युवकवर्ग—विशेषकर विद्यार्थीवर्ग—कितना उच्छृङ्खल एवं अनुशासनहीन होता जा रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है; प्रतिदिन ही कहीं-न-कहीं हड़ताल, लाठी और गोलीचार्ज तथा विद्यालय बंद किये जानेके समाचार मिलते हैं। अध्ययन उनकी समझमें गौण हो गया है, अन्य विघटनकारी कार्य प्रमुख हो गये हैं। 'काकचेष्टा बकध्यानम्'—अतीतकी बातें हो गयी हैं। शिक्षक कक्षामें विद्यार्थियोंकी भलाईके लिये, उतना चिन्तित नहीं रहता, जितना उन्हें प्रसन्न रखनेके लिये, शान्त रखनेके लिये और अशोभनीय घटनाओंका निवारण करनेके लिये, और फिर—

सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस॥

उत्तरार्द्धको लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, उसे तो अनुभव करनेकी आवश्यकता है।

यदि हमारी इस स्थितिमें कोई सुधार न हुआ तो भविष्यका ईश्वर ही रक्षक है। पेड़को सूखनेसे बचाया जा सकता है, पर सूखे पेड़को हरा नहीं किया जा सकता।

आवश्यकता इस बातकी है कि हम धर्मनिरपेक्षताके वास्तविक अर्थको समझें; समाज-धर्म और राष्ट्र-धर्मका पालन करें; अपने ही हाथों अपने ही भविष्यका विनाश न करें।

एक जटिल समस्या—द्रुतगतिसे बढ़ती जनसंख्या

(लेखक—श्रोत्रिय पं० श्रीओमदत्तजी शर्मा गौड़ 'विकल')

आज न केवल भारत, अपितु संसारके सभी महान् देश द्रुतगतिसे बढ़ रही जन-संख्यासे अत्यन्त चिन्तित हैं। वे चाहते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार इसपर रोक लगे। फलस्वरूप अनेकों नयी-नयी विधियाँ अपना रहे हैं। 'परिवार-नियोजन' के अन्तर्गत अनेक कार्यक्रमों—पुरुषोंका ऑपरेशन, लूप-प्रणाली, ओषधि-परीक्षण और निर्माण आदिमें काफी धन व्यय किया जा रहा है। भारत भी इस दिशामें उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्नशील है। खाद्यकी बे-हद कमी सरकारको पहले ही बाध्य कर रही है। एतदर्थ एक पृथक् विभाग भी कार्यरत है, यहाँतक कि मन्त्रालयतक भी।

इतना सब होनेपर भी, क्या भारत सरकार अपने प्रयत्नमें सफल हो रही है? उत्तर नकारात्मक है। केवल कुछ ऐसे मध्यमवर्गीय लोगोंको छोड़कर, अधिकांश इसपर ध्यानतक नहीं देना चाहते। कुछ वायुमण्डल ही इस प्रकारका हो रहा है कि वह ऐसी बातकी ओर उनका ध्यान जाने ही नहीं देता। केवल वही मध्यम-वर्गीय जन, जिनकी आय सीमित और अपर्याप्त है—उन्हें करना पड़ रहा है लालचके वशीभूत होकर। यहाँ-तक कि उनका जीवन भी दूभर हो उठा है। फिर भी स्वेच्छासे नहीं, विवशतासे वे ही इसमें सरकारको अपना योग दे रहे हैं।

सरकारद्वारा समाचारपत्रोंमें समय-समयपर प्रकाशित करायी जानेवाली अनेकों सूचनाएँ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। देशकी अल्पसंख्यक जनता, इसे अपने धर्म और हितोंके विरुद्ध मानकर, अपनाने एवं क्रियात्मकरूप देनेसे साफ इन्कार कर रही है। सरकार सशक्त होते हुए भी, न जाने क्यों चुप हो जाती है और क्यों उन्हें कानूनन बाध्य नहीं करती? परिणाम-स्वरूप दूसरी ओर सरकार अप्रत्यक्षरूपसे बहुसंख्यक समाजको ही, इस सदोष एवं हानिप्रद परिवार-नियोजन-प्रणालीको अपनानेके लिये बाध्य करती आ रही है? उसे ही, इस प्रकार बलिदानका बकरा क्यों बनाया जा रहा है? उसका बहुमत घट रहा है—उसकी जनसंख्या क्रमशः कम होती जा रही है! दूसरी ओर अल्पसंख्यक इस प्रणालीको न अपनाकर, दिन-रात अपनी जनसंख्या बढ़ानेमें लगा है। उनकी जनसंख्या बढ़ रही है और बढ़ती ही चली जायगी। यह तो स्पष्टरूपसे एक प्रकारसे सौतेला और अवाञ्छित व्यवहार हुआ। ऐसा क्यों? प्रश्न स्वाभाविक ही है। यदि सरकार केवल जन-संख्या-वृद्धिपर रोक ही लगाना चाहती है तो उसे सभीपर, समानरूपसे अपनी आज्ञाको लागू करना चाहिये। धर्मके नामपर या उसकी आड़ लेकर अल्पसंख्यक बचें, तो बहु-संख्यकोंके हृदयोंपर आघात लगता ही है। न्याय और संविधान प्रदत्त समान अधिकार एवं घोषणाका यह खुला और स्पष्ट उल्लङ्घन क्यों? यह प्रश्न सर्वोच्च प्राथमिकताके साथ विचारणीय एवं निर्णीत किया ही जाना चाहिये। भारतवर्षकी यह वर्तमान-सर्वोच्च समस्याओंमेंसे एक सर्वोपरि समस्या जो बन गयी? अब प्रश्न यह है कि इस समस्याका समाधान किस प्रकार किया जाय ताकि किसी भी जनको न तो किसीकी आड़ लेनेकी ही जरूरत पड़े और न किसीके हृदयको आघात ही लगे। कटुता भी न बढ़ने पाये। कार्यमें रुकावट भी न पड़ने पाये। मार्गमें न दिक्कतें आयें और न अड़चनें ही।

हर बुद्धिमान् व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति,

सम्प्रदाय अथवा धर्मका हो, इस समस्याकी ओर इसके परिणामको ठीक-ठीक अर्थोंमें समझकर हृदयसे चाहेगा कि शीघ्र ही कुछ ऐसा हो या कुछ ऐसा किया जाय जिससे उसे छुटकारा मिले तथा वह शान्ति और सुखकी साँस ले सके। दम घुट रहा है उसका। तड़फ रहा है वह। आज इस अनेक जटिल समस्याओंसे भरे वातावरणमें।

तो अब प्रश्न यह होता है कि आखिर यह समस्या पैदा ही क्यों हुई ? इसका मूल कारण क्या है ? इसका ठीक-ठीक इलाज क्या किया जाय और किस प्रकार ?

लेखकका दृढ़ विश्वास है कि जनसंख्याकी वृद्धिका मूल कारण ब्रह्मचर्यका पालन न किया जाना प्रमुख है, शेष सब गौण। वर्तमानमें व्याप्त चरित्र-हीनता, इसका एक दूसरा प्रधान कारण माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कतिपय और कारण भी हैं—जैसे, लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षा, छात्र-छात्राओं एवं युवक-युवतियोंका विलासप्रिय वस्तुओं एवं शृङ्गार-प्रसाधनोंमें दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ रही आसक्ति। सिनेमा-प्रियता एवं स्वयंको पूर्णरूपसे सजा-धजाकर तथा अधिक-से-अधिक आकर्षक बनाकर घरसे बाहर निकलनेकी प्रवृत्ति आदि भी इसके सहायक कारणोंमें माने जा सकते हैं। आप स्वयं यह अनुभव करेंगे कि इस कथनमें कहाँतक सत्यता है ? जिधर देखिये उधर ही, स्वयंको जरा भी सम्पन्न समझनेवाला थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा व्यक्ति (बालक-बालिका, युवक-युवती यहाँतक कि अब तो प्रौढ़-जन भी) जब भी घरसे बाहर निकलता है तो अपने-आपको पूर्णरूपसे सजा-धजाकर। और उसे देखकर सहज ही अंधानुकरण करते हैं अबोध बालक-बालिकाएँ, एवं छात्र-छात्राएँ, इस महाविनाशकारक प्रवृत्तिका; विशेषकर स्कूल-कालिजोंकी छात्र-छात्राएँ इस कुप्रवृत्तिको बढ़ानेमें महत्त्व-पूर्ण योग दे रहे हैं। इसके लिये हम उन्हें ही सम्पूर्णतया दोष नहीं दे सकते। कारण, बालक स्वभावसे अनुक-शील होते हैं। जैसा वे अपने बड़ोंको करते वैसा ही तो करेंगे ? माता-पिता, गुरुजन आदि आज इसमें कोई बुराई नहीं देख रहे हैं। दुर्भाग्य !

यह मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह सु वस्तुको ही अधिक देखना पसंद करता है। उसके हर कुरूप वस्तुसे स्वतः ही हट जाते हैं। वह अधिक कालतक देखना कभी नहीं चाहता, कभी च भी नहीं। यह तथ्य है।

अधिक नहीं, कुछ वर्षों पूर्व ही प्रत्येक घरानेकी सौभाग्यवती स्त्री अपना शृङ्गार करती थी, उसी समय जब उसका पति काफी दिनोंके बाद मिलता था। वह भी उस समय जब घरके सभी बड़े रात्रिमें शयन करते होते थे। इस प्रकार वह रात व्यतीत होनेपर ही निज शृङ्गार कर अपने प शयनकक्षमें प्रवेश करती थी और रात्रि व्यतीत हो पूर्व ही वह (सबके सोकर जागनेसे पू ही) पतिके कक्षको त्याग भी देती थी। किसी पता भी न चलने पाता था। यदि वह तनिक भी ढील बरतती अथवा लापरव दिखाती तो उसे अपनेसे बड़ोंसे प्रेमभरा उलाहना सहन करना पड़ता था। इतना नहीं; यदि वह इस जान-बूझकर उल्लङ्घन करती तो उसे फिर गृहलक्ष्मी सम्मानित पदसे रहित भी होना पड़ता था। लज्जा स्त्री भूषण है। लज्जाविहीना स्त्री गृहलक्ष्मी नहीं कहला सक थी। उसे फिर वेश्याकी उपाधितक दे दी जाती और सभी गृहलक्ष्मियाँ उसका तिरस्कार करती थीं।

आज तो सब कुछ उलटा ही हो रहा है। क्यों प्रदर्शनप्रियता बढ़ रही है। अविचार, घर कर है तथा लोक-लज्जाको निःसंकोच तिलाञ्जलि दी रही है ? परिणाम भी विनाशक, स्पष्ट और भयं

हैं। छात्र-छात्राएँ घरसे स्कूल जाते हैं—विद्याध्ययन-के हेतु। परंतु! वे सब घरसे निकलते हैं तब जब कि स्वयंको पूर्णरूपसे सज्जित कर लेते हैं। यह सब यद्यपि होता है—अज्ञानतावश ही। पर होता तो है ही!

जैसा कि ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि स्वभावतः मानव सुन्दरता-प्रिय है। उसे जहाँ-जब भी कोई सुन्दर वस्तु दिखायी दे जाती है, उसका मन आकर्षित होता ही है उसके प्रति। आजके इस युगमें, जब सुन्दरताके प्रसाधनोंमें दिन-दूनी बढ़ोत्तरी हो रही है, वह भी हर सुन्दर वस्तुको देखने लग जाता है। उसके सामने, जब विशेष रूपसे सजकर, कोई निकलता है तो वह उसे निहारनेका लोभ संवरण कर ही नहीं पाता। यदि आपने कभी इस ओर ज़रा भी ध्यान दिया हो, तो आपने यह भी अवश्य ही देखा होगा कि कुछ ही सज्जनोंको छोड़कर अधिकांश ऐसे मिलेंगे जो इन बनी-ठनी (नकली प्रसाधनोंसे स्वयंको सजाकर, सुन्दर मानकर चलनेवाली) बालिका तथा स्त्री (युवा अथवा प्रौढ़) को प्रलुब्ध दृष्टिसे देखने लगते हैं और कुछ लोग तो इस प्रकारके हावभाव प्रकट करने लगते हैं कि जिन्हें देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती होगी। इतना ही नहीं, कोई-कोई तो ऐसी कुचेष्टाएँ भी करने लग जाता है—जिसको कोई भी स्वयंको सभ्य कहने और माननेवाला व्यक्ति कभी सहन नहीं कर सकता!

आये दिन समाचार-पत्रोंमें ऐसे समाचार छपते हैं। जिनमें गुंडोंद्वारा स्त्रियोंके साथ छेड़छाड़ करने तथा माता-पिता अथवा अभिभावकोंकी उन गुंडोंके साथ हुई मार-पीटका हाल होता है। इन गुंडोंमें न केवल युवा-पुरुष ही होते हैं—अपितु! प्रौढ़ एवं वृद्ध जन भी! इस कुप्रवृत्तिका परिणाम इससे भी आगे बढ़ता है। आपने पढ़ा और सुना होगा कि बालिका अथवा स्त्रियोंको गुंडे उड़ाकर ले गये। अब आप कल्पनातक नहीं कर सकते कि गुंडे उक्त अपहरण की गयी बालिका अथवा नारीको, किस-किस प्रकारकी यातनाएँ देकर, उसके जीवनको सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। ऐसी स्त्री यदि गुंडोंका जरा भी विरोध करनेका सत्साहस करती है तो वे उसकी हत्या कर डालनेसे भी नहीं चूकते। यह भी बड़े ही दुःखके साथ पढ़नेमें आता है। ऐसे गुंडोंमें सभ्य तथा शिक्षित लोग भी होते हैं!

यह सब होता है हमारी इस दूषित प्रणालीके कारण। आप ही सोचिये! इसके लिये गुंडोंको सारा-का-सारा दोष देना कहाँतक न्यायसंगत होगा? यदि हम ठंडे दिलसे इसपर विचार करें, तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायगा कि इन सब कुप्रवृत्तियोंके मूल कारण तो हम स्वयं ही हैं। आग और फूसको साथ-साथ रखकर यदि हम यह आशा करें कि धूआँ न उठे, आग न लगे तो यह मूर्खता नहीं तो और क्या है?

अभी इतना निवेदन इस विषयमें मैं और करना उचित समझता हूँ कि इस प्रकार सरकारके द्वारा इतना प्रयत्न किये जानेके उपरान्त भी क्या कारण है, जो जन-संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है? एक प्रधान कारण और भी है इस बढ़ोत्तरीका और वह है—सिनेमाके प्रति दिनदूनी, रात-चौगुनी बढ़ रही आसक्ति। कितनी भयानक आज हो उठी है यह सिनेमाकी आसक्ति? आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं—किसी भी सिनेमाघरके सामने कुछ देर ठहर कर ही। कितनी भारी भीड़ लगी होती है, सिनेमाके

टिकट-घरोंपर शो चालू होनेके समय ? कितनी परीशानीका सामना करना पड़ता है टिकट लेनेके समय ? धक्का-मुक्की खाकर, अपनी जेबें कटवाकर भी तो हमलोग सिनेमा देखना पसंद करते हैं ! हम अकेले ही तो नहीं जाते सिनेमा देखने ? साथमें ले जाते हैं अपनी पत्नीको। यहाँतक कि हम अपने युवक पुत्र-पुत्रियोंको भी ले जाने अथवा अकेले जाने देनेमें कोई नुकसान नहीं मानते ? समझते हैं कि अब वह युवा है और उसे इतनी सुविधा तो दी ही जानी चाहिये। पर क्या हमने उसके भयंकर परिणामोंकी ओर भी ध्यान देनेकी कभी कोशिश की है ? पर यह सर्वथा सत्य है कि इस प्रकार दी गयी स्वतन्त्रताका बड़ा अनुचित और भयंकर परिणाम हो रहा है और होगा ही।

सिनेमामें अनेक प्रकारके दृश्य उपस्थित होते हैं। कुछ निश्चित रूपसे ऐसे कि जिनका हमारे अबोध बालक-बालिकाओंपर बड़ा खराब असर पड़ता है। परिणाम जो होता है—वह बतानेकी आवश्यकता नहीं। सिनेमामें आजकल ऐसे दृश्योंकी भरमार जान-बूझकर ही रक्खी जाती है जिनमें परस्पर स्त्री-पुरुषका मिलन आदि बड़े अवाञ्छनीय रूपमें दिखलाया जाता है।

यदि सरकार सत्य ही इस दिशामें कुछ चाहती है तो उसे अवश्य ही ऐसा कुछ करना ही कि जिससे उपर्युक्त उद्देश्य-पूर्तिमें वास्तविक स प्राप्त हो सके। ऐसे उन सब कारणोंपर प्र लगाने ही होंगे। खासकर हम यह सादर चाहेंगे कि सरकारको, भावी कर्णधार ज भावनाओंको परिवर्तित करनेकी दिशामें, बालक-ब ऐसे चित्र कदापि न देख सकें—जिनमें ऐसे दृश्य हों, शृङ्गार-प्रियतापर भी कुछ-न-कुछ लगानी ही पड़ेगी। भले ही इसमें हमें कुछ हानि भी क्यों न उठानी पड़े। सिनेमा-व्याप मालिकों एवं प्रबन्धकोंसे भी हम यह अनुरोध सादर करना चाहेंगे कि आप भी इस दिशामें त्याग करें। उन्हें भी यह रोक लगानी होगी छात्र-छात्राएँ वैसे चित्र कदापि न देखने पावें, उन्हें चारित्रिक दृष्टिसे गिरानेवाले हों। भले ही इस कारण कुछ आर्थिक हानि भी क्यों न पड़े। यह नम्र निवेदन है कि सभी देश-रक्षाभि महानुभाव इसपर ध्यान दें। परमपिता पर सबको शीघ्रातिशीघ्र सद्बुद्धि प्रदान करें।

जीवन शान्ति-सुखका आगार बने

जिनसे जगती विषय-वासना, बुद्धि ग्रहण करती अविवेक।
मन-इन्द्रिय होते अधर्मरत, त्याग शास्त्रमर्यादा टेक॥
बढ़ जाती अधर्म-रति, होने लगता सहज यथेच्छाचार।
अधःपात होता, जीवनमें बढ़ते दुःख-अशान्ति अपार॥
ऐसे प्राणि-पदार्थ, दृश्य, साहित्य, वस्त्र, आहार-विहार।
हैं ये सभी कुसंग, त्याज्य हैं, वृत्ति आसुरीके व्यवहार॥
बुद्धि विवेकवती हो, जिससे ऐसा हो सात्त्विक सत्संग।
मन-इन्द्रिय संयत हों, उनपर चढ़े पवित्र धर्मका रंग॥
संयम-नियम धर्मसम्मत हो मनकी वृत्ति ईश्वराकार।
सर्वभूतहित जीवन जिससे बने शान्ति-सुखका आगार॥

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११८० से आगे]

'रामेश्वरम्-मन्दिर'के बाद धार्मिक पवित्रताकी दृष्टिसे 'गंधमादन पर्वत'का विशेष स्थान है। यह नगरके उत्तर-पश्चिमी किनारेपर रामेश्वरम्-मन्दिरसे डेढ़ मीलकी दूरीपर एक बालूके टीलेपर बसा है। इसके निकट ही रामनादके राजाद्वारा निर्मित एक दुर्गका खंडहर है। यहीं एक चोटीपर एक दुमंजिला भव्य मन्दिर भी है। बताया जाता है, हनुमान्‌जी इसी स्थानसे लंकामें कूदे थे। यह स्थान यहाँ 'रामझरोखा' नामसे प्रसिद्ध है—

राम झरोखा बैठि के सब का मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी ताको तैसइ देय॥

—वाली कहावत इसी पुण्यस्थानको लक्ष्य कर कही जाती है। निकट ही पाँचों पाण्डवोंके नामपर पाँच तीर्थ हैं, जिन्हें धर्मतीर्थ, भीमतीर्थ, अर्जुनतीर्थ, नकुलतीर्थ और सहदेवतीर्थ कहते हैं।

गंधमादन पर्वतके बाद 'कोदण्ड राममन्दिर' भी दर्शनीय है। यहाँ पहुँचनेके लिये समुद्रके किनारे-किनारे जाना पड़ता है। इस मन्दिरमें सीता, राम, लक्ष्मण और हनुमान्‌जीके अतिरिक्त विभीषणकी मूर्ति भी है और कहते हैं कि श्रीरामने विभीषणका राजतिलक यहीं किया था।

इसके अतिरिक्त भद्रकाली देवी, महालक्ष्मी देवी एवं नम्बिनायकी देवी-मन्दिर और सीताकुण्ड, विल्लुनितीर्थ, कपितीर्थ तथा भैरवतीर्थ भी अपने धार्मिक महत्त्वके लिये प्रसिद्ध हैं। इन सबके साथ कुछ पौराणिक घटनाएँ सम्बद्ध हैं।

श्रीरामेश्वरम्-मन्दिरमें शिवलिङ्गके लिये 'रामलिङ्ग' अथवा 'रामेश्वर' कहते हैं। रामायण-कालमें जैसा कि पहले कहा गया है, सेतुनिर्माणके बाद भगवान् रामने लिङ्गरूपसे भगवान् शंकरकी प्रतिष्ठा की, पूजन किया जो गो० तुलसीदासजीके निम्न कथनसे प्रमाणित है—

परम रम्य उत्तम यह धरनी।
महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना।
मोरे हृदयँ परम कलपना॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए।
मुनिवर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

यह शिवलिङ्ग रेतका बना है। कथा है कि हनुमान्‌जीको कैलाससे शिवलिङ्ग लानेके लिये भेजा, किंतु हनुमान्‌जीको लौटनेमें विलम्ब हो गया। ऐसी दशामें श्रीरामने सीताजीद्वारा बनाये गये रेतके लिङ्गकी स्थापना की और उसका पूजन किया। हनुमान्‌जीद्वारा कैलाससे लाया गया शिवलिङ्ग 'रामलिङ्गम्'के उत्तरमें स्थापित किया गया और इसे 'विश्वनाथार', 'काशीलिङ्गम्' और 'हनुमान्‌लिङ्गम्' आदि कहकर पुकारा जाता है।

हमने अपने रामेश्वरम्-प्रवासमें श्रीरामेश्वर भगवान्‌के दर्शन-पूजनके साथ रामेश्वरम्-मन्दिरका खूब निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त इस पुण्यक्षेत्रके उपर्युक्त कुछ पुण्यस्थलोंको जाकर उनके दर्शन-सेवनका महत्त्व-माहात्म्य उठाया।

अपनी रामेश्वरम्-यात्राके अन्तिम दौरमें दिनाङ्क २४ सितम्बरको हमारा भगवान् रामेश्वरको गङ्गाजल-समर्पणका कार्यक्रम था। गतवर्ष गङ्गोत्तरीमें अपने पात्रको जब हमने गङ्गाजलसे भरा था तो उसी समय उसे भगवान् रामेश्वरको समर्पण करनेका हमारा संकल्प हो गया था। उत्तराखण्डकी यात्रासे लौटनेके उपरान्त यह गङ्गाजल-पात्र लगभग वर्ष-सवा व हमने अपने मकानमें रक्खा। गङ्गोत्तरीमें गङ्गाकी प्रवेशधारासे गङ्गाको अंशरूपमें जब हमने पृथक् किया तो इसी वायदेसे कि उसे उनके इष्टदेवको सुपुर्द करेंगे। अपने इसी वचनकी पूर्तिके लिये हम रामेश्वरम् आये थे और आज इस वचनपूर्तिका यह शुभ मुहूर्त था। हमने अपने निवासस्थानपर अपने

पंडाजीसे गङ्गाजलीका विधिवत् पूजन कराया और पुष्पोंसे अलंकृत गङ्गाजलीको अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें लिये गाजे-बाजेसे रामेश्वर-मन्दिरकी ओर चल दिये। हमारी उत्तराखण्ड-यात्रामें बारह व्यक्ति थे। दक्षिणकी इस यात्रामें रत्नकुमारीजीके जो उत्तराखण्ड-यात्रामें हमारे साथ थीं, अचानक रुक जानेके कारण यद्यपि जबलपुरसे हमलोग ग्यारह व्यक्ति ही चले थे; किंतु बादमें मद्राससे श्रीमती प्रकाशवती देवीके हम लोगोंके साथ हो जानेसे हमारे यात्रा-दलकी संख्या फिर बारह हो गयी थी। बारह व्यक्तियोंका यह दल, जिसमें ग्यारह व्यक्ति अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें अपनी-अपनी गङ्गाजली लिये और प्रकाशवती रत्नकुमारीद्वारा भेजी गङ्गाजली लिये गाजे-बाजेसे मन्दिरकी ओर बढ़ रहे थे, हमारी धार्मिक मान्यताओंका मूर्त्तरूप था। भावनाओंसे सभीका हृदय भरा था। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका और इनमें भी श्रीमती गोदावरी देवीका अधिक। भावनाएँ नेत्रद्वारसे पानी बनकर बह रही थीं। इस समय हमें अनायास ही कन्यादानकी अनुभूति हो उठी। निर्धन हो या धनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित हर सद्गृहस्थके ऊपर विवाह-योग्य कन्याका कैसा दायित्व होता है और जब वह इस कन्या-ऋणसे मुक्त होकर उसे अपने घरसे विदा करता है; उस समय उसकी जैसी मानसिक स्थिति हो जाती है, उस अवस्थामें हमलोग मन्दिर पहुँचे और गङ्गाजीको शिवजीके सुपुर्द करने उनके पुजारियोंके हाथोंमें थमा दिया। पुजारियोंद्वारा गङ्गाजल-समर्पणके पूर्वका पूजाविधान सम्पन्न कर कुछ ही देरमें गङ्गाजल-अर्पणका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। हमलोग सभी एक आतुरता, एक उत्सुकता और एक आत्मिकभाव लिये शिवजीके दरबारमें आज उनके सम्मुख बैठे थे। पुजारी गङ्गाजल-अर्पणके पूर्व पात्रको अपने हाथोंमें लेकर जिस यात्रीका यह गङ्गाजल-पात्र होता उच्च कण्ठसे उस यात्रीका नाम पुकारकर गङ्गाजल अर्पण प्रारम्भ करते। उस वक्त उस यात्रीका, जिसका गङ्गाजल शिव-समर्पण होता, मानस मानसरोवरके राजहंसकी भाँति भक्तिके सागरमें तैरने लगता। गङ्गाजल-समर्पणकी इस प्रक्रियामें दर्शक भावनाओंमें डूब जाता और ऐसा अनुभव करने लगता जैसे गङ्गाजल रूपसे आज वह स्वय अपन इष्टदेवके समर्पित हो रहा है। बारी-बारी हम सभी लो[गोंके] गङ्गाजल-पात्र पुजारी उठा-उठाकर शिवलिङ्गपर उड़े[लने] लगे। एक ओर पुजारी ऊँचे हाथों जलपात्रको धारा[रूपमें] शिवलिङ्गपर उड़ेल रहे थे, दूसरी ओर हमारे नेत्रोंसे अश्रुओं[की] झड़ी लगी थी। अन्तरङ्गमें भावसरिता बिना कूल-कगा[र] उमड़ रही थी, मस्तिष्कमें कल्पनाएँ और कथाएँ च[क्कर] लगा रही थीं। जान पड़ता, भगवान् शिवके जटा-ज[ूटसे] निःसृत भागीरथीकी पुराण-प्रसिद्ध प्रवेग धारा, जो युगों[से] विश्वम्भरके जटा-जूटमें बँधी रही थी, लोक-कल्याणकी अ[पनी] लक्ष्य-पूर्तिके बाद आज पुनः उसमें समाहित हो रही [है]। हमने सुन रक्खा था कि गङ्गोत्तरीका पावन जल जब भग[वान्] रामेश्वरको चढ़ता है तो यह जलधारा लिङ्गसे सवा ह[ाथ] ऊपर उठती और उछलती है। यह हमने अनुभव कि[या]। इतना ही नहीं, गङ्गाजल समर्पित करनेकी इस क्रियामें ह[में] शिवलिङ्ग और गङ्गाजलकी इस धाराका एक विशाल रूप देख[ा]। जान पड़ा शिवमिलनके लिये आतुर गङ्गोत्तरीकी धारा धा[] छोड़ गगनगामी हो गयी है और शिवलिङ्ग भी दीर्घाकार निस्तब्ध नीरव ऊँचे गगनतक उठ गया है। दोनोंका मि[लन] हो रहा है, इस मिलनमें हमें कभी गङ्गामय शिव दीखते कभी शिवमय गङ्गा। बीचमें न कहीं कोई पण्डित, पुजारी, पु[रो]हित है और न दर्शक है, केवल निस्तब्ध नीरव, नीलाका[श] पर इस निस्तब्ध नीरव, नीलाकाशमें नीलकण्ठके इस स्व[रूप] से भी एक मोहक शब्द सुनायी पड़ता। यह था छल-छल इस छल-छल शब्दके कण-कणमें, इसकी ध्वनि-प्रतिध्वनि इसकी लयमें, इसके अर्थ और इसकी व्याख्यामें इन दो[नोंके] मिलनका कैसा इतिहास, द्वैतसे अद्वैतकी कैसी मार्मिक कहा[नी] छिपी थी, इसे कौन समझ पाया है। विचार उठा-'ईश्वर अंस जीव अबिनासी' की उक्तिके अनुसार इस ज[ड़] जंगम सृष्टिमें मानवका अस्तित्व और उसका औचित्य [क्या] है। एक ओर जिस मानवने विशाल देवालय, मन्दि[र], मस्जिद और पिरामिड-जैसे आध्यात्मिक प्रतिष्ठानों[का] निर्माण किया, दूसरी ओर अतीत कालमें अपनी सुरक्षा[के] लिये विशाल और सुदृढ़ दुर्गोंका निर्माण किया। य[ही] नहीं, आज आधुनिक वैज्ञानिक अणु-आयुधोंके निर्माण अन[]

अन्तरिक्षके अन्वेषणके सफल परिणामोंसे सुसज्जित होकर चन्द्र-लोक और अन्य नक्षत्रलोकोंमें बसनेकी तैयारी कर रहा है। आखिर उसका मूल इष्ट क्या है ? कौन जानता है ? इस पहेलीके रहते हुए भी अतीतके अनुभव और वर्तमानका दृश्य देखकर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि एक महत्त्वाकाङ्क्षा, जो जीवनकी प्रेरणादायी है, इस प्रगति और प्रतियोगिताका कारण है। एक दौड़ता है तो सभी दौड़ने लगते हैं, दुनिया दौड़ती है। इस दौड़में कौन आगे जाता है और सबसे आगे पहुँचकर अपने इष्टतक पहुँचता है, यही अतीतका अनुभव और आजका विज्ञान है। पुराणकालमें भागीरथी इसी अपनी भावनासे अपनी इसी महत्त्वाकाङ्क्षासे विष्णु-चरणसे निःसृत होकर अवनिपर दौड़ी। उसके साथ अन्य अनेकों अगणित नदी-नाले भी दौड़े; किंतु अपने गन्तव्यतक लोक-कल्याणकी लम्बी मंजिल पूरी कर अपने लक्ष्य अपने इष्टदेव तक केवल गङ्गा ही पहुँचीं। इसकी क्या वजह है। यह विचार उठते ही उसके ध्येयकी पवित्रता, साधन और साध्यकी विशुद्धतापर बरबस हमारा ध्यान जाता है। लोककल्याण मात्र ही जिसका ध्येय हो और अपने इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये जो तूफानी गतिसे अपनेको सर्व-हित-भावसे समर्पित कर दे, वह मानव पवित्र और पूजाका पात्र तो होता ही है, सर्वपूज्य और सर्वव्यापक अपने इष्टके भी अधिक निकट रहता है। किंतु इस निकटताको प्राप्त करनेके लिये उसे कठोर श्रम और कठिन मंजिल पार करनी होती है। भगीरथके सदृश प्रयत्न, परिश्रम और पुरुषार्थ हो, तभी उसे इष्टदर्शन अथवा इष्ट-प्राप्ति हो सकती है और ऐसे प्रयत्नका जो परिणाम होता है, वह उस प्रयत्नके कर्ताके नामसे उसके प्रणेता रूपसे ही जाना जाने लगता है। जैसे जाह्नवीके प्रणेता भगीरथके कारण ही जाह्नवी भागीरथी नामसे जानी और मानी जाती हैं, इसी प्रकार जीवनके अन्य सभी क्षेत्रोंमें व्यक्तिका पराक्रम उसके परिचयका कारण बनता है। जीवनके इस परिचय और प्रयोगकी परम्परामें जीवन भर जी-जानसे जुटी जाह्नवी आज अपने इष्ट अभीष्टके समर्पित होती देख सहसा भगवान् भूतनाथ और देवी उमाका प्रणय हमें दिखायी दिया अनन्त अवसरोंपर और अनन्त रूपोंमें। धाराका तारतम्य टूटते ही जब दृष्टि स्थिर हुई तो फिर हमें वही तपोलीन शिव लिङ्गरूपसे प्रतिष्ठित दिखायी दिये और तपस्विनी उमा गंगोत्तरीसे 'कोटि जनमु लगि रगर हमारी। बरउँ संभु नतु रहउँ कुआरी॥' का उद्घोष करती गङ्गासागरकी ओर उन्मुख। जाने कितनी बार शिव और उमाका प्रणय हुआ, कितने बार होगा। जाने कबसे भगवान् रामेश्वरको यह गङ्गाजल भेंट हो रहा और कितनी बार हो चुका है कौन जानता है—हमारी समझमें तो इस समर्पणका सम्बन्ध सृष्टिकालसे ही है और इसका अन्त भी सृष्टि-संहारसे ही होगा।

इस समर्पणकी भावनासे विरत मानव-धर्म नहीं। यही हर व्यक्तिका जीवन-धर्म है। धर्मसे विरत व्यक्ति जीवनकी एक विडम्बना है। एक ऐसी छलना है, जिससे विमुक्त व्यक्ति ही तो अपने जीवनमें सफल और सार्थक होता है। नहीं तो, अपने जीव-मुक्तिके मार्गसे दूर बहुत दूर भटक एक ऐसे छल—एक ऐसी छलनामें भटकता रहता है, जिसे चौरासी लाख योनियोंमें भटकना कहा जाता है। अतः जीवनके इस छल, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरतासे भरा हुआ है, जीवनकी इस छलनासे बचनेके लिये ही शिवको गङ्गाजल समर्पणके बीच जो एक शब्द छल-छल हमने सुना, वही साररूपसे भगवान् शिव और जाह्नवीका वह संदेश था, जिसके द्वारा ही मानवका जीवन सफल और सार्थक हो सकता है, सरिता-शिरोमणि सलिला गङ्गाके सदृश पवित्र और पूजायोग्य। यही एक अनुभव और अनुभूति जीवनके लम्बे सफरमें यत्र-तत्र होती रही है जो गतवर्ष उत्तराखण्ड और उसमें भी विशेषकर गङ्गोत्तरी-से प्रवाहित गङ्गाकी धाराके साथ आज उसके शिव-समर्पणके अवसरपर एक आत्मानुभवके रूपमें एक ऐसी उपलब्धि हमें हुई, जिसपर जीवनका न केवल भूत और वर्तमान, सारा भविष्य ही निर्भर है।

(क्रमशः)

उच्च स्तरका जीवन !

'जीवन उच्च स्तर' का हो यह आज हमारा है नारा।
'उच्च स्तर' का अर्थ यही है—ऊँची हो जीवन-धारा ॥
सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम हो सदाचार सबको प्यारा।
जीवमात्रके माध्यमसे हो 'प्रभु-सेवा' ही ध्रुवतारा ॥

× × ×

अखिल विश्वके जड-चेतनमें हो पवित्र 'स्व' का विस्तार।
'सबका स्वार्थ' बने निश्चित ही 'अपना स्वार्थ' एक अविकार ॥
सबका दुःख मिटाने, सुख देनेको सभी रहें तैयार।
करें सभी सबके सुख-हितके लिये सहर्ष त्याग स्वीकार ॥

सदाचार, सद्भाव, साधुता, सत्य वचन, शुचि सद्व्यवहार।
सुख-दुःखादि द्वन्द्वमें समता, संयम, शील, शुद्ध आहार ॥
सेवा, सर्वभूत-हितमें रति, सात्त्विक गुण विचार आचार।
सरल-सौम्य मन, संतसङ्ग-रुचि, शान्ति, सुहृदता हो साकार ॥

विनय-विनम्र मधुर हितकर हो वाणी, दें सबको सम्मान।
हो अस्तेय, असंग्रह, मन-तनसे न किसीका हो अपमान ॥
ब्रह्मचर्य आठों प्रकारसे नित्य सुरक्षित रहे महान्।
'उच्च स्तरका जीवन' यह—जिससे प्रसन्न होते भगवान् ॥

× × ×

भय, विषाद, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष, असूया, भूतद्रोह।
राग, कामना, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, अशान्ति, दर्प, छल, मोह ॥
नित्य अपूर्ण भोग-तृष्णा, पद अर्थ-भोगकी ही नित टोह।
निन्दा, वैर, विरोध, क्रूरता, हिंसा, तनिक नहीं मन छोह ॥

नित्य परापकार-रुचि, दूषित तामस कर्मोंमें उत्साह।
चिन्तानल प्रज्वलित चित्तमें, नित्य हृदयमें दारुण दाह ॥
विघटन-नाश-अशान्ति-उपद्रवकी बढ़ती नित नूतन चाह।
निज मिथ्या सुख-हेतु, नहीं मन पर-विनाशकी कुछ परवाह ॥

नास्तिकता, अधर्ममें रति अति, बाह्य प्रदर्शन, मिथ्या त्याग।
ईश्वर-शास्त्र-संत-द्विज-निन्दामें रुचि सहज सहित अनुराग ॥

उच्छृङ्खल, विधिहीन, यथेच्छाचारी, अघजीवन दुर्भाग।
'निम्न स्तर'के ये दुर्गुण जिनसे आसुरपन उठता जाग ॥

× × ×

ये सब निम्नस्तरके उगते बढ़ते जिससे दोष तमाम।
वही कहाता 'उच्चस्तरका जीवन' आज विगत-विश्राम ॥
मर्यादा सब तोड़, छोड़कर कुलकी रीति-नीति अभिराम।
जन-जनसे ऋण लेकर करना भोग, बढ़ाना तन-आराम ॥

करना मनमस्ती, कर गुरु-जन-शास्त्र-वचनका अति अपमान।
सीनेमा प्रतिदिवस देखना, मनमें भर रखना अभिमान ॥
मदिरा-मांस उड़ाना अंडे, शूट-बूट-नकटाई तान।
सजे-धजे अकड़े रहना, नित खूब दिखाना झूठी शान ॥

चाहे जहाँ, जभी, जो कुछ भी खाना-पीना बिना विचार।
खड़े-खड़े ही मूत्र त्यागना, करना नित अशुद्धि-विस्तार ॥
टबमें नंगे बैठ नहाना, कर चर्बी-साबुन-व्यवहार।
बिना नहाये बिस्तरपर ही पीना चाय त्याग आचार ॥

फँस फैशन कुव्यसन आदिमें करना आडम्बर स्वीकार।
खर्च बढ़ाकर, करना चोरी सभ्य बने कर कपटाचार ॥
निम्न कोटिके नाच-गानको मान बैठना संस्कृति-सार।
नर-नारीका मिलना करना बाधारहित विलास-विहार ॥

गला फाड़कर यह पुकारना, 'हम स्वतन्त्र हैं, नहीं गुलाम।
निजका और देशका करते, हम 'विकास' हर समय ललाम ॥
जीवनको उच्च स्तर पर ला, हमने खूब कमाया नाम।
बनो कृतज्ञ हमारे सब तुम, समझो हमें देशहित-धाम ॥

'उच्च स्तर' के सुखद नामपर निम्न-स्तरके करना काम।
पुण्यकर्मके पूत नामपर करना घृणित पाप अविराम ॥
तामस बुद्धि बताती उलटा सत्‌को दुःख, असत् सुखधाम।
'निम्नस्तर'का इसी बुद्धिसे रखा आज 'उच्च स्तर' नाम ॥

इसीलिये हम भीख माँग, हैं ऋणपर ऋण ले रहे अमान।
छाया आज दुःखपरिणामी इस 'उच्च स्तर'का अभिमान ॥
ले 'विकास'का नाम इसीसे हम कर रहे 'विनाश-विधान'।
शुद्ध बुद्धि दें हमें, मोह हर आज दयामय श्रीभगवान ॥

प्रसाद-रहस्य

[कहानी]

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

सेठ लखपतिराय धनी हैं, धर्मात्मा हैं। धनी तो वे अपने नामके अनुरूप ही हैं, धर्मात्मा कितने हैं—इसका अनुमान उनकी राजमहल-सरीखी हवेलीके एक भागमें उनके द्वारा बनाये गये श्रीलक्ष्मीनारायणजीके भव्य मन्दिरसे होता है जिसमें वे नित्य नियमसे पूजा किया करते हैं—वह पूजा जो भूलसे भी कभी बिसरती-छूटती नहीं, क्षणार्धसे लेकर दो-दो पहरतककी चलती रहती है—अवसरानुसार, क्योंकि सेठजी पूरे अवसरवादी हैं। अवसर चूकना वे स्वप्नमें भी नहीं सीखे। अवसरकी महिमाके गीत गाते उनकी जबान नहीं थकती।

सेठजीने एक खास कामके लिये भगवान्‌की आराधना की। यद्यपि वह खास काम था अन्यायसंगत और अनुचित। पूर्वप्रारब्धवश उस कार्यके बहाने सेठजीकी तिजोरीमें पैसे आ गये।

जब इस खास कामसे छुट्टी मिली, तब सेठजीको सत्य भगवान्‌की याद आ गयी। अब वे उन्हें मनानेमें लगे। आखिर समझदार थे न! सबको अपना बनाये रखकर ही सबसे अपना काम बनाया जाता है।

हाँ तो, सत्य भगवान्‌को मनानेके लिये पूर्णिमाके दिन संध्याके समय श्रीसत्यनारायणजीको कथाका आयोजन किया गया—बड़े ठाट-बाटसे। घरके मन्दिरके आँगनमें शामियाना तना, मण्डप बना, फर्श बिछा, दीपक जले। धूपका सुवासित सौरभ चारों ओर फैल गया। पूजा एवं व्रतसम्बन्धी तरह-तरहकी सामग्रियोंके ढेर लग गये। प्रसादके लिये फलोंके टोकरे आये; खीर, पूड़ी, कसार आदि भाँति-भाँतिके व्यञ्जन तैयार किये गये। कथा कहनेके लिये प्रसिद्ध कथावाचक स्वनाम-धन्य मटकू पाण्डेय बुलाये गये, जो अपनी रेशमी धोती, रेशमी दुपट्टे, लम्बी चोटी, चन्दनाभिभूत भाल तथा खटर-पटर खड़ाऊँमें बड़ी सज-धज एवं शानसे आये। संक्षेपमें आयोजनमें कोई कोर-कसर नहीं रहने दी गयी।

नियत समयपर कथा आरम्भ हुई। कथा सुननेके लिये जो जन-समुदाय एकत्र हुआ था, उससे मन्दिरका आँगन ठसाठस भर गया। मटकू पाण्डेयने गद्य-पद्यकी बाढ़ लाकर विविध प्रकारकी अंग-भंगिमा प्रदर्शन करते हुए कथामेंसे कथापर कथा निकाल-निकालकर, ऐसी-ऐसी बातें सुनायीं कि जिन्हें सुनकर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ जायँ, अच्छा-खासा आदमी लोटन कबूतर-सा लोटनियाँ लेने लगे। उपस्थित श्रोताओंका खूब मनोरञ्जन किया। अपनी एक कला नहीं छोड़ी उन्होंने। सबको काममें लेकर सभीको रसविभोर कर दिया। मटकू पाण्डेयकी ओर देखकर सब बावले-से बने हँसे चले जा रहे थे—मनोरञ्जनके साथ-साथ धर्म-लाभ तो हो ही रहा था।

श्रोताओंमें हरिया भगत भी थे। वही हरिया भगत जी खादीकी मोटी धोती पहिने, खादीका ही राम-नामी दुपट्टा ओढ़े, इकतारा हाथमें लिये जहाँ-तहाँ घूमते फिरते हैं, जिन्हें कोई काम नहीं है, जो एकदम निठल्ले हैं। इकतारेपर गुनगुन करते हुए, जहाँ जो मिल जाय, खा लेना और जहाँ रात आ लगे, वहीं पड़कर सो लेना—बस करनेके नामपर जिनको इतना ही भर आता है। कथा-कीर्तन अलबत्ता भगतजी यथासम्भव कहीं नहीं छोड़ते। इसीलिये यहाँ भी पधार गये हैं, वैसे तो वे सेठ लोगोंसे दूर-दूर ही रहते हैं। दूर-दूर नहीं रहें, तो करें भी क्या। उन तक उनकी पहुँच भी तो आसान नहीं है। मायासे माया······ लम्बे-लम्बे हाथ करके मिला करती है; यहाँ भगतजीके पास धरा ही क्या है।

भगतजी कथाके समयसे पहुँच गये थे, अतः आगे ही बैठे थे। आश्चर्यकी बात यह थी कि जब समस्त श्रोतागण रसविभोर हो रहे थे, तब भगतजी जड़ बने बैठे थे······ खोये-खोयेसे। पता नहीं कहाँ डूब गये थे। कौन कहे···कथा सुन भी रहे थे, या नहीं। कथाका जो प्रभाव श्रोताओंपर पड़ रहा था और जो सम्भवतः कथावाचकको अभीष्ट भी था, वह तो उनपर किञ्चित् मात्र भी पड़ा नहीं···यह निश्चित है। क्यों? इसका जवाब यथार्थतः कौन दे? हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि अपने-अपने भाग्य और अपनी-अपनी लगनकी बात है।

कथा समाप्त हुई। आरती हुई। भोग लगा। एकत्रित

समुदायमें आरती और प्रसाद लेनेके लिये हलचल मची। मचनी ही थी। आरती और प्रसादका महत्त्व ही ऐसा है। जाने इस कामकाजी दुनियाके क्या-क्या काम-काज इनसे सध जाते हैं। और फिर कहीं आरती और प्रसाद न लेने—न ले पानेसे भगवान् रूठ गये तब, तब तो लेनेके देने पड़ जायँगे ? बात यह है कि जब भय और लोभ दोनों मनमें समा जाते हैं, तब तो जो न हो जाय सो थोड़ा। ऐसी ठेलमठेल और धक्कमधक्केल मची—मचायी इन भय-लोभग्रस्त आरती-प्रसाद-इच्छुकोंने कि बस, मेले-ठेलेपर, तीर्थ जाती हुई रेलपरकी भीड़-भड़क्का और इस अवसरपर मचती धक्का-मुक्कीका हू-ब-हू दृश्य आँखोंके आगे फिर गया। उसे भी एक तरहसे इसने दूर बैठा दिया। दुनियाँका प्रिय सिद्धान्त 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' भगवान्के दरबारमें भी सहज सिद्ध होता दीख पड़ने लगा।

हरिया भगत आगे बैठे थे, अतः आरती तो उन्होंने आसानीसे ले ली, लेकिन फिर जो रेले आये, उन्होंने उन्हें उनकी जगहपर जमा नहीं रहने दिया। मुश्किल एक और भी थी। भगतजीके दिलमें रेले आ गये थे। उन रेलोंने उन्हें इस भावोदधिमें धकेल दिया था कि अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंको आरती-प्रसाद सहज सुविधासे मिलना चाहिये और कम-से-कम उनके कारण ही किसीको असुविधा नहीं होनी चाहिये। नतीजा यह निकला था कि अन्य जनोंके लिये जगह खाली करते-करते पीछे पड़ते-पड़ते वे द्वारके समीप आ लगे थे और शान्त भावसे वहीं मौन खड़े रहकर प्रसाद-लाभके सौभाग्यकी प्रतीक्षा करने लगे।

आवश्यक-अनावश्यक शोर-गुलके बीच आखिर आरती-प्रसाद वितरण समाप्त हुआ। प्रसाद-वितरणके पुनीत कार्यमें अन्य जनोंके साथ-साथ स्वयं सेठजी भी लगे रहे थे। ऐसा लगना अच्छा ही रहता है। भगवान्के यहाँ खातेमें सहज अतिरिक्त पुण्य जमा होता है और दुनियामें बैठे-बिठाये अपनी नम्रताकी निरभिमानताकी धाक जम जाती है। जब सब लोग आरती-प्रसाद लेकर चले गये, आँगन खाली हो गया, तब सेठजीकी निगाह हरिया भगतपर पड़ी जो अभी भी द्वारके समीप उसी शान्त किंतु अब साथ ही कुछ विचित्र भाव-मुद्रामें खड़े थे। भगतजीको देखकर सम्भवतः क्लान्तता-श्रान्ततावश कुछ चिनचिनाते-से तथा हास-परिहासद्वारा उस क्लान्ति-श्रान्तिको मिटानेकी चेष्टा करते हुए-से सेठजी बोले—

'कहो भई कलियुगी नन्दा ! तुम कैसे खड़े हो अभी ? क्या दुबारा प्रसाद लेना है। लेना है, तो बढ़ो आगे ! दुबारा, तिबारा, चौबारा जितनी बार जी चाहे, लो झटपट !'

हरिया भगत जातिके नाई थे, सेठजीके व्यंग्य-वचन उनके अन्तस्में चुभ गये। स्वाभिमान सभी रखते हैं। उनकी चलती तो वे द्वारपर आकर झाँकते भी नहीं। पर कथा-श्रवणके लिये उन्हें आना पड़ा। कथा-कीर्तनके लिये वे सब कुछ कर सकते हैं। अब भी अपने आहत-स्वाभिमानकी विशेष चिन्ता न कर उसे सेठजीपर एक मधुररस चोटके उपचारसे ही बहलाते हुए वे प्रसाद लेने आगे बढ़े।

अभी तो मिला ही नहीं, सेठजी ! दुबारा, तिबारा, चौबारा-की बात तो पीछे होगी। आपके यहाँका प्रसाद आसानीसे कब मिल पाता है ? तपस्या करनी पड़ती है उसके लिये तो, सो तपस्वी पूरे तुम हो ही।'

सेठजीने कसे हाथसे (जाने क्यों ?) प्रसाद देते हुए पुनः भगतजीपर व्यंग्य कसा, पर उन्हें अब उसपर ध्यान देनेकी फुर्सत कहाँ थी। वे तो प्रसाद ले अपने सौभाग्यपर फूल, जाने कैसे किन-किन भावोंमें विभोर हुए तीरकी तरह बाहर निकल गये।

जैसे ही बाहर आये भगतजीने देखा कि कितने दीन-हीन, दरिद्र-विपन्न एवं हरिजन भाई-बहिन, जिनकी हवेलीमें पहुँच नहीं थी, बाहर खड़े हैं······प्रसादकी आशा लगाये······ पर प्रसादसे वञ्चित। भगतजी उन्हें इस अवस्थामें देखकर करुणाविगलित हो उठे। उनकी आँखें भीगी-भीगी हो गयीं। भगवान्के प्रसादसे किसी भी अभिलाषीके वञ्चित रहते उन्हें प्रसाद पानेका क्या अधिकार है—सहसा उनमें विद्युत्-सा कौंध गया। अब उनसे रहा न गया। उन्होंने अपना प्रसाद उनमें वितरण करना आरम्भ कर दिया। यहाँतक कि एक किनका भी अपने लिये न रक्खा। वह उपेक्षित किंतु श्रद्धालु जनसमुदाय तनिक-तनिक-सा प्रसाद पाकर ही कृतार्थ हो गया और भगतजी उसे—उसके कृतार्थ-भावको, माधुरी एवं गरिमाको लखकर ही स्वयं प्रसाद न पाकर भी अपूर्व तृप्ति एवं कृतकृत्यतासे भर उठे।

इधर कथाका समारोह समाप्त हो चुकनेपर सेठजीने स्वयं प्रसाद पानेका आयोजन किया। एक स्वर्ण-थाल··· विशेष-विशेष व्यञ्जनोंसे भरा हुआ तथा केलेके पत्तोंसे विशेष

रूपसे ढककर भोगमें लगाया गया था। वह अभीतक अछूता था। समूचे प्रसाद-वितरणमें इसमें हाथतक नहीं लगाया गया था। रक्खा ही वह इस तरह गया था कि अछूता रहे, हाथतक न लगे। सेठजीकी दृष्टिमें वही असली भगवान्‌का भोग था और इसे ही प्रसाद रूपमें सेठजीको पाना था। सबके चले जानेपर जब मण्डपमें केवल सेठ-सेठानी रह गयें, तब सेठजीने जल्दीसे उस थालको सरकाकर सेठानीसहित पेट भरकर बढ़िया अपने योग्य प्रसाद पाना चाहा। जल्दी सच्ची थी। पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे। व्रत जो रखना पड़ा था, माना—पेय पदार्थोंके रूपमें इस बीचमें पेटमें काफी सामान जा चुका था। किंतु इतने बड़े डील-डौलमें उससे क्या होना था। ऊँटकी डाढ़में जीरा क्या करता?

पर···अरे···रे। यह क्या? थाल सरकाना तो दूर, सेठजी ठीकसे उसे छू भी न सके। थाल तो अग्नि-कुण्ड बन गया था। सेठजी अँगुलिया सहलाते घबराकर आह! उह! करते······रह गये! सेठानी चकित होकर पूछने लगी–'क्या बात है?'

सेठजी कुछ कहें-बतलायें, इससे पहिले ही उनकी दृष्टि भगवान्‌की ओर गयी और घबराये हुए सेठजी और घबरा गये। उन्होंने देखा–भगवान्‌के नेत्रोंसे रोषकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। लगा उन्हें कि जैसे वे भस्म होकर रह जायँगे! डरे, सकपकाये सेठजी। सहसा भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रवाले हाथकी अँगुलीसे बाहरकी ओर संकेत किया। सेठजीके अन्तस्‌में भी फुरना हुई और वे पागलसे बाहरकी ओर दौड़ पड़े···घबराये···घबराये-से कुछ विचित्र-सी अवस्थामें।

हरिया भगत प्रसाद-वितरण करके अभी थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि सेठजीने जा पकड़ा। लाख बनाकर कुछ बात करनेकी सोचते हुए भी सेठजीके मुँहसे सीधे यही शब्द निकले—

'मेरी भूल हुई, भूल जाना उसे। और हाँ······तुम्हें भगवान् बुलाते हैं······किसकी भूल? कौन भूलें? और हाँ, क्या कहा?—मुझे भगवान् बुला रहे हैं! मुझे!··· भगवान्।···अरे!···ओह!···तो चलो।

एक साथ कुछ चकित कुछ हर्षित होकर भाव-विह्वल भगतजीने और भी भाव-विह्वल होकर अटपटी वाणीमें कहा और नाचते-कूदते वे सेठजीके साथ हो लिये। उनपर अद्भुत पागलपन छा गया था।

मन्दिरमें भगवान्‌के समक्ष पहुँचते ही पुलकित, रोमाञ्चित होते हुए अजस्र रसभीने गद्‌गद कण्ठसे बोले भगतजी—

'क्यों याद किया नाथ मेरे? मुझ दीन-हीन अकिञ्चनको ···सर्वथा तुच्छ, न कुछको?···तुम्हारा हूँ, इसलिये क्या? फिर बोलो, क्या करूँ तुम्हारे लिये? भजन सुनाऊँ क्या? सहसा पागलोंकी तरह हँसकर। अथवा कुछ खोटी-खरी सुनना चाहते हो? अभी-अभी उसके लिये भी तो तुम्हींने प्रेरणा की है, मेरे नटखट प्रेरक।'

भगतजीको देखते ही भगवान्‌का रोष हवा हो गया था। उनके प्रेमलपेटे अटपटे वचन सुनकर उनके कमलोपम कोमल एवं अमृतोपम मधुर अधरोंपर मन्द-मन्द मुस्कान छा गयी। उस विश्व-विमोहिनी मुस्कानको निरखकर भगतजी सब सुध-बुध बिसारकर उसे ही एकटक निरखनेमें तन्मय हो गये।

कुछ क्षण बीते, फिर भगतजीको सेठके भोजनासनपर बैठनेका भगवान्‌की ओरसे संकेत हुआ। स्वयं सेठजीने भगतजीको अपने आसनपर बैठाया·····सर्वप्रेरककी प्रेरणासे प्रेरित होकर फिर भोगका थाल उठाकर (थाल इस समय एक दम अपने स्वाभाविक तापमानमें था) भगतजीके समक्ष रक्खा। सेठानीजी रजतपात्रमें जल भरकर ले आयीं और तब भीत, चकित दम्पतिने कातर कण्ठसे भगतजीसे प्रसाद पानेके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना की।

भगवान्‌की माधुर्यसे ओतप्रोत आज्ञा, सेठ-सेठानीकी आग्रहपूर्वक प्रार्थना—फलतः भगतजी रुच-रुचकर अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिसे भगवत्-प्रसाद पाने लगे। वे प्रसाद-पा रहे थे और सेठ-सेठानी बैठे-बैठे यह देखकर आश्चर्यान्वित हो रहे थे कि प्रसाद जिस रूपमें बनाकर रक्खा था, उसका रूप भगतजीके सामने आते ही कुछ और ही हो गया था। उनका अचम्भा रह-रहकर बढ़ता ही जा रहा था। जब वे देखते कि भगतजी जो भी पदार्थ समाप्त करते उसके स्थान-पर तुरंत कोई नया अलौकिक पदार्थ स्वयं थालमें आ जाता और इस तरह थाल जैसे-का-तैसा भरा ही रहता। एक विचित्र लीला हो रही थी। न भगतजी प्रसाद छककर

ग्रहण करते थक रहे थे, न प्रसाद उनके द्वारा छककर ग्रहण होते हार मान रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे भगत और भगवत्-प्रसाद एकात्मभावको प्राप्त हुए एकरस-लीला कर रहे हैं।

सेठ-सेठानी भगतजीका प्रसाद पाना देख रहे थे और अचम्भेमें खोये जा रहे थे, ऐसेमें सहसा उनके मनमें जागा—

'हमारे लिये प्रसादका थाल छूना मुहाल हो गया और इस भगतके लिये यह हाल। आखिर यह बात क्या है?'

इतना कुछ सेठ-सेठानीके मनमें आया ही था कि भगवान्‌के अधरोंसे उनकी ओर शब्दोंकी एक लहर-सी प्रवाहित हो चली···प्रसाद-रहस्यको उसके एक-एक परतमें खोलती।

'भगतके पास जादू है न टोटका। भगत भगत है। बस प्रसाद भगतके लिये है, भोगी भोगलोलुपके लिये · भेदभावसे भरेके लिये नहीं। भगत वही है, जिसे स्वार्थ छू नहीं गया है। जो प्रसाद स्वयं लेनेके लिये धक्कामुक्की भरी दौड़-धूप न करके औरोंको लेने-देनेमें—उन्हें उसके लिये सुअवसर प्रदान करनेमें ही अपनी कृतार्थता मानता है। लिये हुएके भी किनके-किनकेको वितरण करनेमें ही जिसे परम तृप्तिका रस मिलता है, वह है प्रसादका वास्तविक अधिकारी। अधिकारीको मिल गया प्रसाद। जो अधिकारी बने, वही पाये यह वह··· तू···मैं···कोई भी······।'

सेठ-सेठानीके अन्तश्चक्षु खुल गये। प्रसाद-रहस्य उनकी समझमें आ गया। सहसा एकतारेकी तान गूँजी···यथार्थताके अलौकिक रसमें आनन्दविभोर करके उन्हें कृतार्थ करती। प्रसादलीला समाप्त हो गयी थी अपना कार्य करके, भगतजी प्रसाद पा, प्रसादका थाल पूर्ववत् छोड़कर हाथ-मुँह धोकर अब भजन गा रहे थे।

जिनपर वे और जो उनपर रीझे हुए थे उन्हीं भगवान्‌को, रीझे हुए भगवान्‌को और-और रिझानेके लिये रिझ-रिझाकर और फिर रीझनेके लिये रीझकर रस लेने और देनेके लिये सहज मधुर स्वरमें—

बने मौन सब, कौन बखाने?
लीला तेरी तू ही जाने।
किससे छिपता, मिलता किससे?
कटता किससे सिलता किससे?
किससे छिलता, खिलता किससे?
पार न पा, हार सब माने।
लीला तेरी तू ही जाने।
हृदय काँपता रह-रह हिलता,
काग-भीड़ जग कंधा छिलता,
राज-हंस किसमतसे मिलता,
पानी दूध निपट जो छाने।
लीला तेरी तू ही जाने।
राजहंस मिल जिसको जाता,
सब पा वह सबमें खो जाता,
भेट तुझे तू ही हो जाता,
तू ही लीला तेरी जाने।
लीला तेरी तू ही जाने।

भगतजी गा रहे थे···गाये जा रहे थे। तन-मनकी सुध-बुध बिसार, भावविभोर हुए और सुन-सुनकर भावविभोर हो रहे थे। स्वयं भावोदधि भगवान् और साथ-साथ सेठ-सेठानीके रूपमें हर्षाश्चर्यसे चकित, हर्षित समूचा जगत्।

ऐसी रचना सुनाओ !

सुनावौ कवि! तुम रचना ऐसी आज।
(जातें) होय समरपन पूरन मति-मन प्रिय-पद सजि सुचि सुंदर साज॥
अनिमिष निरखत रहैं नैन नित प्रियतम-मुख-बिधु रूप ललाम।
बानी नित नव नव उछाह सौं करती रहै गान गुन-नाम॥
पीवत रहै अतृप्त मधुर मुरली-धुनि-सुधा-नाम-गुन कान।
प्रियतम-अंग-सुगंध मधुरतम सूँघत रहै निरंतर घ्रान॥
प्रिय-प्रसाद-रस रसमय रसना चाखत रहै परम अविराम।
प्रियके अंग-अंग-परसन को सुख त्वक् लेत रहै रसधाम॥

चिन्ता दूर करनेका नया तरीका

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

उस दिन अपने एक मित्रके यहाँ गया, तो एक बड़ी अजीब बात देखी। पूजाके स्थानपर देवताओंके मुसकराते हुए चित्रोंके साथ ही काँचमें मढ़ी हुई स्वच्छ सुवाच्य अक्षरोंमें लिखी एक कविता सजी हुई थी।

'पूजामें कविताको स्थान !' यह क्या रहस्य है। मैं दूरसे देखता रहा। जब मेरी जिज्ञासा न रुकी, तो उनसे प्रश्न कर ही बैठा, 'यह क्या मढ़वाकर पूजामें रक्खा है आपने ! क्या मैं देख सकता हूँ !'

'शौकसे देखिये ! यह है स्वर्गीय महादेव भाईकी दुर्लभ कविता, जिसे प्रतिदिन प्रातःकाल पूजाके बाद मनन कर मैं दिनभरके लिये नयी प्रेरणा प्राप्त किया करता और अपनी चिन्ताएँ भगाया करता हूँ।'

यह कहते-कहते उन्होंने मढ़ी हुई कविता मेरी ओर बढ़ायी।

'नहीं-नहीं, इसे एक बार स्वयं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ। पढ़नेका तरीका भी तो सीखना है।'

'तो लीजिये, मैं ही इसे पढ़कर सुनाता हूँ।'

वे उस कविताको रस ले-लेकर धीरे-धीरे पढ़ने लगे, जैसे प्रत्येक अक्षर उनके समग्र शरीरमें व्याप्त हो रहा हो, समस्त मन और आत्मामें रम गया हो। लीजिये, आप भी तन्मयतापूर्वक इसे मनमें बैठाइये और अपने मानसिक जीवनका सुदृढ़ आधार बनाइये—

'माना कि तुम्हारे अपने प्रियजन तुम्हें छोड़कर चले जायँगे, पर इसके लिये व्यर्थ ही चिन्तामें घुलनेसे काम नहीं चलेगा।

भले ही तुम्हारी आशा-लता टूट पड़े, परिश्रम और दीर्घसाधनाके फल तुम्हें न प्राप्त हों, लेकिन इन सबके लिये महज परीशान और दम तोड़नेसे फायदा न होगा !

आधी रातमें घनघोर अँधेरा आयेगा, तो क्या डरकर तुम वहीं ठहर जाओगे ? नहीं, उस समय साहसके साथ तुम बार-बार दीपक जलाकर अँधेरा दूर करनेका प्रयास करना।

और मान लीजिये अगर दीपक न भी जले, तो इसके लिये आखिर घबरानेसे तो काम नहीं चलेगा। अँधेरेमें ही आगे बढ़ना और अपना रास्ता स्वयं बनाना पड़ेगा !

यह ठीक है कि तुम्हारी करुण-वाणी सुनकर वनके प्राणी तुम्हारे पास हमदर्दी जनाने आयेंगे और तब भी तुम्हारे अपने घरके पत्थर नहीं पिघलेंगे।

याद रक्खो, घर या समाजका कोई व्यक्ति सचाईके साथ तुम्हारे साथ सहानुभूति नहीं दिखायेगा, लेकिन इसके लिये पस्तहिम्मत होनेसे कोई लाभ न होगा। स्वयं ही अपने भरोसे आगे बढ़ना होगा। खुद ही हिम्मत करनी होगी।'

बड़ी तन्मयतापूर्वक वे इस कविताको पढ़ते रहे, फिर बोले—

'भाई साहब ! इस कविताके शब्दोंसे मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है और चिन्ता करनेकी जगह मैं काममें, नया प्रयत्न करनेमें जुट जाता हूँ। इस कविताके शब्दोंके सहारे मैंने जिंदगीमें अनेक संकटोंको हँसते-हँसते पार किया है और आत्मबल विकसित किया है। आप भी चिन्तानाशका यह मनोवैज्ञानिक तरीका इस्तेमाल करें।'

वास्तवमें मुझे भी इस कविताको प्रतिदिन पढ़ने और उसमें प्रतिपादित विचारोंको गुप्त मनमें बसानेसे बड़ा लाभ हुआ है। मनमें कठिनाइयोंसे लड़नेका पुरुषार्थ मिला है।

हम जिन-जिन विचारोंको मनमें बार-बार दुहराते हैं, जिन्हें गुप्त मनमें बसा लेते हैं, वे हमारे जीवनको चलाते हैं। मनमें साहस और आशा भरते हैं। जो विचार हमारे मनके केन्द्रमें रहते हैं, जिन्हें निगाहोंके सामने रखते हैं, जिन्हें हम हरदम देखते और याद रखते हैं, वे हमारे लिये जीते-जागते सदाके मित्र हैं।

कमरेमें लिखे हुए सिद्धान्त-वाक्य, चित्र, विचार आदि हमारी निगाहोंके सामनेसे गुजरते हैं, उनका गुप्त प्रभाव अनजानेमें हमारे गुप्त मानसिक जीवनपर पड़ा करता है।

उनके घरमें गायत्री, आरती और पवित्र चित्र दीवारोंपर लगे हुए हैं—भगवान् बुद्धका शान्तिमय मुद्रामें चित्र, बालरूप श्रीकृष्णका विहँसता हुआ चित्र, भगवान् श्रीरामका प्रसन्न मुख, गाँधीजी, नेहरूजी, चित्तरंजनदास, भगतसिंह, सरोजिनी नायडू आदि नेताओंके प्रसन्न मुद्रामें आकर्षक और लुभावने चित्र ! दीवारें जैसे हँस रही हों। सर्वत्र हँसता-खेलता-विकसता जीवन बिखरा पड़ा है।

मैं उनकी चित्रोंकी इस प्रदर्शिनीको देख रहा था कि वे बोले—

'मित्र ! क्या तुम दीवारोंपर लगे इन चित्रोंके विषयमें एक मनोवैज्ञानिककी राय जानते हो ?'

मैं चुपचाप उनके मुँहको निहार रहा था।

'नहीं जानते, बड़ी उपयोगी सलाह है। मुझे तो इन चित्रोंसे गुप्त संकेत और प्रेरणा मिलती रहती है। वह मनोवैज्ञानिक कहता है, 'किसीके घरमें लगे हुए चित्र लुभावने तो होते ही हैं, पर वे लगानेवालेके मनके चित्र भी होते हैं। इस नियमके साथ मेरी नयी खोज यह है कि ये चित्र हमारे घरका सुखद, उत्साहवर्द्धक, प्रफुल्ल, धैर्य और साहसपूर्ण प्रसन्नतादायक नया वातावरण भी बनाते हैं। हर आदमी अपना वातावरण और नयी भावनाएँ इन चित्रोंके चुनावद्वारा बना सकता है और अपने घरको स्वर्गके एक कोनेमें बदल सकता है।'

मुझे यह सलाह उपयोगी लगी है। सिद्धान्तवाक्यों, प्रेरक कविताओं और आरतीके अतिरिक्त मैंने नये-नये आशाप्रद चित्र कमरेमें लगाये हैं, जो निराशा और चिन्ताको दूर करते हैं। हमारी दीवारोंपर वह पवित्र चित्र हैं, जो दिनभर मनहूसियत और निराशाको मार भगानेवाले हैं। ये चित्र भारतकी परम्पराओंको जगानेवाले हैं, मनमें वीरता, साहस, धैर्य और कष्टसहिष्णुताको बढ़ानेवाले हैं। निराशा हटाकर मनको उल्लाससे भर देनेवाले हैं। सदा इस शान्त सुखद उत्साहवर्द्धक वातावरणमें रहनेसे भला चिन्ता क्योंकर मनमें टिक सकती है ?

चित्र बनानेसे भी चिन्ता दूर होती है

चर्चिल इंगलैंडके प्रधान मन्त्री थे। सारे दिन राजनीतिमें गलेतक डूबे रहते थे। उन्हें न केवल अपने देशकी, प्रत्युत समग्र विश्वकी राजनीतिक उथल-पुथलकी चिन्ता रहती थी, पर उन्होंने चिन्तासे अपने मनकी शान्तिको बचाये रक्खा। उन्होंने फिक्र और परीशानियोंसे मुक्त रहनेका एक नया तरीका निकाला था।

वह क्या था ?

'आप चिन्ताओंसे कैसे बचते हैं ?'

वे बोले—'मुझमें जब जरा भी थकान आती है, तो मैं शुष्क राजनीतिको पूर्णतः विस्मृत कर चित्र बनानेमें लग जाता हूँ। ये चित्र कुछ बहुत खूबसूरत नहीं बनते; पर जितनी देरमें इस कलामें डूबा रहता हूँ, उस चित्रमें अङ्कित भाव मेरे मनसे चिन्ता दूर कर देते हैं। मैं ताजगीका अनुभव करता हूँ। कलामें लगनेसे जीवनमें सरसता आती है।'

अजीब अनुभव है। वास्तवमें चित्रकलाद्वारा दुनियाकी छोटी-बड़ी चिन्ताओंको पछाड़ा जा सकता है।

श्रीआइजन होवरका अनुभव भी इसीसे मिलता-जुलता है। उन्होंने भी लिखा है—'चित्रकलाने मुझे नया प्राण, मानसिक बल और जीवनमें कटु अनुभवोंको भूलनेकी क्षमता दी है।'

कुछ ऐसे ही अनुभव भारतीय चित्रकारोंके भी हैं। भारतीय चित्रकारोंने भी अपनी चित्रकलासे अपना दुःख-दर्द दूर किया है। चित्रकार श्रीनन्दलाल बोस एक चित्रपर परिश्रम कर रहे थे। वे आस-पासका सब कुछ उसमें भूले हुए थे। चित्रकी समस्त वृत्तियाँ कलाकी उदात्त भावनापर केन्द्रित थीं। चित्र बनानेमें वे दुनियादारीके सब दुःख-दर्द भूल गये थे। एक व्यक्तिने पूछा—

'मास्टर महाशय ! आप चित्र-निर्माणमें इतना परिश्रम कैसे कर लेते हैं ?'

चित्रकारने उत्तर दिया—'चित्र-निर्माणमें मैं परिश्रम अवश्य करता हूँ, पर शौकके कारण मैं उस परिश्रमको परिश्रमके रूपमें स्वीकार नहीं करता। ज्यों-ज्यों चित्रकारकी कल्पना चित्रके रूपमें मूर्त होती जाती है तथा जितनी सफलतासे मूर्त होती है, उतना ही इस चित्रकारको अपनी कलाकी साधनामें रस मिलता है। और—उस रसका आनन्द श्रमकी क्लान्तिको प्रतिक्षण नष्ट करता है। मेरे हर चित्रके पीछे एक इतिहास है और मैं तो मानता हूँ कि मेरे हर चित्रमें मेरे ही अन्तरके सुख-दुःख, जय-पराजय तथा उतार-चढ़ावका चित्रण होता है····मेरा अनुभव है कि चित्रकारके मन और उसके चित्रमें तादात्म्य होनेसे चित्रकारके मनका बोझ हलका होता है। तब परिश्रमके लिये स्थान ही कहाँ रह जाता है भला।'

बड़े-बड़े विद्वान् और राजनीतिज्ञोंने चित्र बनाकर या घर सजाकर अपने लिये सुखद और प्रेरणादायक वातावरणका निर्माण किया है। उनकी दीवारें बोलती हुई पुस्तकें बन गयी थीं। आप भी चित्रोंसे अपने घरको सजायें। ग्रन्थोंका प्रभाव तो पढ़े-लिखे थोड़ेसे व्यक्तियोंपर ही पड़ता है, किंतु उजले पक्षके धार्मिक ऐतिहासिक और नैतिक वृत्तियोंको बढ़ानेवाले चित्रोंसे बिना पढ़े-लिखे सैकड़ों व्यक्ति जीवनमें प्रेरणा और प्रकाश पा सकते हैं। चित्र बोलती पुस्तकें हैं, जो हमारे चित्तको मोहकर सत्पथपर अग्रसर करती हैं। भले चित्रोंको ही घरमें स्थान देना चाहिये। सिनेमा-सम्बन्धी कामोद्दीपक चित्र तो अनर्थकारी ही सिद्ध होते हैं।

शासन, शिक्षा और सदाचार

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

आज अंधाधुंध प्रचारका युग है। इसमें सब प्रकारके प्रचारोंके लिये आसमान-जमीनके कुलाबे भिड़ाये जाते हैं। चुनाव आदिके प्रचारमें अनेक कुत्सित साधनोंका भी उपयोग होता है, बड़े-बड़े वादे किये जाते हैं, अनेक प्रलोभन होते हैं, पर पीछे कुछ नहीं होता। किंतु सदाचारका प्रचार करनेवाले बहुत ही कम हैं, जिसके बलपर ही संसार सदासे टिका रहा है। वेंकटेश्वर, गीतासंदेश, विश्वज्योति-जैसे कुछ पत्रोंने 'सदाचार' अङ्क छापे, पर ये सब नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजसे अधिक नहीं सिद्ध हुए। आजके राजनीतिक नेताओं, विद्वानों, साधुओं, महंथों, बड़े-बड़े डिग्रीधारी प्राध्यापकों, कलाविदों, विद्यार्थियों आदिमें भी सदाचारके प्रति पहले-जैसी निष्ठा या रुचि नहीं रही। इसीका परिणाम यह हो रहा है कि डकैती, चोरी, हत्या, धोखा, लूट, महँगी एवं सभी क्लेशोंका विस्तार होता जा रहा है और जब इन अपराधों तथा जघन्य कुकृत्योंका भण्डाफोड़ होता है तो पता चलता है कि ये दुष्कर्म आजके शिक्षित कहे जानेवाले लोगोंद्वारा किये जाते हैं! इससे शिक्षाकी दिशाका पता चलता है। एक मनीषीने तो यहाँतक कह डाला कि ऐसे हजारों डिग्रीधारियोंसे (जो चारित्रिक मेरुदण्डसे रहित हों) एक अनपढ़ किंतु सच्चरित्र व्यक्ति ही बहुत श्रेष्ठ है*। डा० राधाकृष्णन्ने, जो बहुत वर्षोंतक अनेक विश्वविद्यालयोंके उपकुलपति तथा देशके उपराष्ट्रपति तथा राष्ट्रपति रह चुके हैं, बहुत सोच विचारकर गुजरात-विद्यापीठके (जो गांधीजीद्वारा संस्थापित है) विगत १९ वें दीक्षान्त भाषणमें कह दिया कि 'विद्यार्थियोंके अनाचारके पीछे हम नेताओं तथा अध्यापकोंका आचार ही मूल कारण है—'What the leaders did, it was followed as an example. If there

* An illeterate with the strength of character is far better than a thousand of M. A. with no moral backbone. (Sri Vatre—K.kalpataru vol 30, Devaluation of the Devalued character. p. 214)

was anything wrong with the Students, we are guilty for it.' (Ibid. P. 213)

प्राचीन कालमें अध्ययन-अध्यापनमें सदाचारको ही प्रमुख स्थान प्राप्त था। उपनिषद् तथा धर्मसूत्रोंमें यह बार-बार आया है कि आचारहीनको वेद भी पवित्र नहीं करते। वे अन्तमें उसे सपक्ष शकुनिके नीड-त्यागके समान छोड़ देते हैं।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

(मौक्तिको० महाभा० ५।३५।४२; ४३।५, वसिष्ठधर्म० ६।३, देवीभाग० १२।२।१)

मनुस्मृति, महाभारत आदिमें सदाचारको ही सर्वोपरि धर्म माना गया है।

'आचारः प्रथमो धर्मः' (महा० अनु० १४८।१३७)
'आचारः परमो धर्मः' (मनु० १।१०८)

सदाचारसे दीर्घजीवन, ईप्सित संतति तथा अक्षय धनकी उपलब्धि होती है—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
(मनु० ४।१५६)

इसके विपरीत दुराचारी पुरुष सदा दुखी रहता है।
(मनु० ४।१५७)

प्रायः सभी पुराणोंमें सदाचारपर कई-कई अध्याय हैं। सभी स्मृतियों, आयुर्वेद-ग्रन्थों तथा दर्शनभाष्यों, तन्त्र वार्तिक आदिमें सदाचारपर लंबे प्रकरण एवं अंश हैं। निबन्ध-ग्रन्थोंका आचारकाण्ड प्रसिद्ध है। यदि सबका संग्रह हो तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाय। पहले कथा-उपदेशद्वारा सदाचार-प्रचारकी व्यवस्था थी, यह उन-उन ग्रन्थोंके अवलोकनसे सुस्पष्ट होता है। इससे जितना कार्य होता था, राजशासनसे उतना किसी प्रकार शक्य नहीं था तथा राजाओंसे उन मुनि-महात्माओंकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी एवं राजागण स्वयं उनके आज्ञानुसार बर्तते थे। मेधातिथिने राजाको कानून न बनाकर व्यवस्थापक मात्र रहनेकी सलाह दी है। पर आजका धर्मनिरपेक्ष शासन—सदाचार एवं सदाचारियोंका विरोधी है। जिस शासनमें सदाचारी व्यक्तियोंको कष्ट दिया जाता हो, वह शासन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वास्तवमें सदाचारका प्रचार ही शासन-यन्त्रका प्रमुख कार्य होना चाहिये। इसीमें उसकी उन्नति, वृद्धि एवं रक्षा है। अन्यथा बड़े-बड़े छल-बल करनेपर भी वह चल नहीं सकता। अतः दण्डनीति महान् त्यागी एवं तपस्वीके द्वारा ही धार्य कही गयी है। (द्रष्टव्य महा० शान्तिपर्व ६०—१००) अन्यथा सर्वत्र अशान्ति, क्लेश, सांकर्य एवं गड़बड़ी फैल जाती है। अतः एक मनीषी-व्यक्तिने ठीक ही कहा है कि 'यदि मेरी चले तो मैं शिक्षामें आधा समय सदाचार-पालनके शिक्षणमें ही यापन कराऊँ।'*

विनय-नम्रताका लोप

जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।

'विद्या ददाति विनयं'

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः······परोपकारिणाम्'

—की बात ही लुप्त हो गयी। विगत नेताओंने अपने विषम भीषण भाषणोंसे छात्रोंकी नम्रताको दास-मनोवृत्तिका रूप बता-बताकर कण-कण निकाल फेंका। परोपकार-साधुताकी तो बात ही कहाँसे आती। यद्यपि उन नेताओंके पुत्र-पुत्रियोंको इस विकट ललकार तथा बरगलानेका फल भी स्वयं गत चुनावोंमें भुगतना पड़ा। उच्छृङ्खल बनाये गये छात्र देशकी सम्पत्ति नष्ट कर रहे हैं; स्टेशन, डाकखाने, विद्याभवन, तथा खादी-भवन आदि जलाकर स्वयं अपना तथा अपने देशका धन नष्ट कर रहे हैं। क्रुद्ध अविनीत, अशान्त, विवेकशून्य

* If I have power, I would order the teaching and practice of moral and spiritual Values to cover half the working time alloted to the students each day. (Ibid. P. 215, Col. I.)

मस्तिष्कको हिताहित-विचारका अवसर ही कहाँ रहता है ? विवेक-बुद्धिको तिलाञ्जलि दे दी गयी । जहाँ पहले गायत्री-जपपूर्वक सद्‌बुद्धि, शान्ति, विनयकी सदा प्रार्थना की जाती थी । विद्यार्थीवर्ग जिस प्रज्ञाके लिये सतत प्रयत्नशील था; क्योंकि मन्त्र-तन्त्रकी साधना अभीष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिये ही होती है, वहीं अब वह सर्वथा विपरीत दिशामें चल रहा है, यह सब शुभ लक्षण नहीं हैं । वस्तुतः सद्‌बुद्धि सब श्रेय पुरुषार्थोंके मूलमें अभीष्ट है । तदर्थ पूर्ववत् संध्या, गायत्री-जप, ध्यान, विनय, अनुशासन, शान्ति सब आवश्यक हैं । कहते हैं श्रीमालवीयजीने विश्वविद्यालय इसी लक्ष्यसे बनाया था कि दस सहस्र लड़के प्रतिदिन प्रातःकाल-सूर्यार्घ्य देकर उपस्थान एवं जप करेंगे । यदि ऐसा होता तो अवश्य ही विश्वका महान् मङ्गल होता । पर आज वहाँ जो कुछ हो रहा है, वह प्रत्यक्ष है । गाँधीजी भी सादगीके उपासक थे । पर शिक्षा, आजका शासन—केवल खर्चीले जीवन-यापनका आदर्श उपस्थित करता है । वस्तुतः यह शिक्षा नहीं, अशिक्षा है । सुशासन नहीं, कुशासन है । सुतरां, श्रेय इसीमें है कि हम शीघ्र चेतें तथा अपना प्राचीन मार्ग पुनः ग्रहण करें । संध्या, गायत्री, भगवद्-उपासना, साधना, सदाचार, विनय न रहा तो देश स्वर्ग नहीं नरकका रूप धारण करने लगेगा ।

गोसंवर्धनके क्षेत्रमें गोशालाओंका योग

(लेखक—श्रीराधाकृष्णजी बजाज)

आज भारतमें करीब तीन हजार गोशालाएँ मानी गयी हैं । जिनमेंसे ५०० गोशालाएँ सक्षम निकल सकेंगी ऐसा मानें । प्रथम २५० गोशालाओंकी सूची बनाकर यह देखा जाय कि उनके क्या साधन उपलब्ध हैं।

एक जमाना था, जब समाजमें घर-घर गोपालन होता था, चराईके लिये पर्याप्त गोचरभूमियाँ थीं, गाय रखनेमें कोई खास खर्च नहीं करना पड़ता था । सबसे सस्ता और सबसे अच्छा दान गोदान माना जाता था । अन्नदानकी महिमा थी, पर गोदानकी अधिक थी; क्योंकि गाय जीवनभर पोषण देती है, जब कि एक बार दिया हुआ अन्न कुछ समय बाद समाप्त हो जाता है । हर घरमें सैकड़ों गायें रहती थीं, उनमेंसे कुछ गायें देनेमें दिक्कत भी नहीं होती थी । अतः गोदान हर प्रकारसे पुण्यका काम था । जमानेमें धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ । जनसंख्या बढ़ी, चारागाह घटते गये । तब लोगोंने बेकाम गायोंको आवारा छोड़ना शुरू कर दिया । उससे खेतोंमें, बाजारकी मंडीमें आवारा गायोंकी तकलीफ बढ़ी, उस तकलीफके निवारण एवं आवारा गायोंकी व्यवस्थाके लिये मंडीवालोंने व्यापारपर कुछ लाभ लगाकर गोशालाएँ खोलीं । गोशालाओंका खर्च मंडियोंकी लागबाग तथा भावुकोंके दानसे चलने लगा । समयकी आवश्यकता पूरी हुई ।

आज समय कतई बदल गया है । चारागाह नाममात्रके रह गये हैं, जनसंख्या दुगुनी-तिगुनी हो गयी है, नित्य बढ़ती ही जा रही है । शहरोंमें घर-घर गोपालन असम्भव-सा होने जा रहा है । आवारा पशुओंकी तादाद सीमासे बाहर हो गयी है । लेकिन उसकी अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ी । उस ओरसे आँख मूँद ली गयी तो आवारा गायें कसाईके पास पहुँचती रहीं । अब सारे देशमें गोवध-बंदीका एक आन्दोलन छिड़ा है । उसने भारतकी आत्माको जगाया है । गोवधका पाप सदा चलता रहे यह भारतकी आत्माको स्वीकार नहीं है । भारत सरकारने भी एक 'गोरक्षा कमेटी' नियुक्त की है । आज नहीं, कल भारतमें गोवध बंद होकर रहेगा, ऐसा मानना चाहिये ।

गोवध बंद होनेपर हमारी जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। बूढ़ी, लूली, लँगड़ी गायोंका पालन हो, आवारा गायोंकी तादाद क्रमशः घटे, अनुत्पादक पशुओंकी पैदाइश ही रोकी जाय, नस्ल-सुधार हो, गायोंमें दूध बढ़े, जमीन थोड़ी रह गयी है तो सिंचाईके साधन अधिक बढ़ाये जायँ आदि अनेक महत्त्वके काम हमारे सामने हैं। इन सबका बोझ केवल सरकारपर डाला जाय तो उसके लिये उठाना भारी पड़ेगा। उसके लिये जो टैक्स देना पड़ेगा, उससे भी जनता हैरान हो जायगी। फिर, सरकारी तरीकोंमें 'खर्च दूना काम आधा' जैसी आजकी स्थिति है। अतः जनता-जनार्दनको ही यह महान् काम उठाना होगा। सरकारका इसमें पूरा सहयोग रहेगा, तभी गोसेवाका यह कार्य सफल हो सकता है।

सम्पूर्ण गोवध-बंदीके संदर्भमें गोसंवर्धन-गोपालनके लिये एक अखिल भारतीय गोसेवा बोर्ड होना चाहिये, जिसका मुख्य संचालन गैरसरकारी लोगोंके हाथमें हो। उसमें सरकारके लोग भी रहें। आज केन्द्रीय गोसंवर्धन कौंसिलको इस रूपमें जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। प्रादेशिक गोसंवर्धन कौंसिलोंको या गोसेवासंघोंको प्रादेशिक गोसेवा बोर्डोंके रूपमें बदला जा सकता है। प्रादेशिक बोर्ड पूरे प्रदेशके गोसंवर्धनका प्लान बनावें। प्राथमिक युनिट गोशालाओंको बनावें और गोसंवर्धन-गोपालनका काम करें। गोसंवर्धन-गोपालनकी व्यापक योजना सारे देशके लिये बनायी जाकर उसको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

बतौर नमूनेके एक योजना राजस्थानको ध्यानमें रखकर बनायी गयी है। वह नीचे दी जा रही है। यह योजना पाँच वर्षके लिये है।

(१) राजस्थानमें २६ जिले, १०० तहसील, २३२ ब्लाक एवं करीब तीस हजार ग्राम हैं। राजस्थानकी जनसंख्या पौने दो करोड़ है। गोपशु-संख्या सवा करोड़ है।

(२) पाँच सालके कामका लक्ष्य

(अ) हर जिलेमें कम-से-कम एक गोरस-भण्डार हो, यों कुल मिलकर २६ गोरस-भण्डार चलें। हर भण्डारमें रोजाना पाँच मनसे बीस मनतक दूधकी खपत हो। एक चौथाई दूध गोशाला पैदा करें, तीन चौथाई ग्वालोंसे खरीदा जाय। गोपालकोंको गायके दूधका भाव भैंसके दूधके बराबर मिले।

(आ) साँड़-सर्विस

दस गाँवोंके बीचमें कम-से-कम एक बढ़िया साँड़ अवश्य रक्खा जाय। यानी पूरे राजस्थानमें २५०० साँड़ोंकी व्यवस्था हो। साँड़-खरीदीमें या साँड़-पालनमें एक हजारकी सहायता दी जाय। साँड़का चालू खर्च गाँववाले स्वयं उठानेको तैयार हों।

(इ) बछड़ी-पालन

सालाना ५००० नयी गायें तैयार करनेके लिये पाँच सालमें २५००० बछड़ियोंका पालन हो। हर बछड़ीको माँका दूध छूटनेके बाद करीब तीन वर्ष पालना होगा। हर बछड़ीके पीछे तीन सालमें २२५) तक इनामके रूपमें सहायता आदि एवं २५) व्यवस्था-खर्च मिलाकर २५०) प्रति बछड़ीपर सहायता खर्च होगा। तीन सालमें बछड़ीका पूरा खर्च करीब ७५०) का होगा, जिसमें २५०) सहायता एवं ५००) बछड़ीके मूल्यमें निकालना चाहिये।

(ई) हरा चारा

हरे चारेकी खेती दस हजार एकड़में हो, ऐसा प्रयत्न किया जाय। प्रति एकड़ अच्छे बीजका खर्च २५) आयेगा, ऐसा माना गया है।

(उ) गोसदन

राजस्थानमें दस गोसदन माने हैं। प्रति गोसदन

५०० पशु मानें तो कुल ५००० होते हैं। प्रति-पशु सालाना खर्च १००) माना है।

प्रदर्शनी

गोप्रदर्शनियाँ दो तहसीलोंमें एक मानी जायँ तो सालाना ५० प्रदर्शनियाँ हो जाती हैं। हर एक प्रदर्शनीको आकर्षक एवं शिक्षाका केन्द्र बनाना हो तो प्रतिप्रदर्शनी दो हजारका अनुदान और खर्च मानना चाहिये।

(३) पाँच वर्षके खर्चका अनुमान—

(अ)	गोरस-भण्डार २५ प्रति भण्डार औसत	८०००)	= रु० २ लाख
(आ)	साँड़-खरीद २५००, सहायता	१००० साँड़ प्रति	= रु० २५ ,,
(इ)	बछड़ी-पालन २५००, प्रति बछड़ी	२५०)	= रु० ६२॥ ,,
(ई)	हरा चारा १०००० एकड़, प्रति एकड़	२५)	= रु० २॥ ,,
(उ)	गोसदन १०, पशु-संख्या ५००० प्रतिवर्ष	१००) खर्च	= रु० २५ ,,
(ऊ)	प्रदर्शनियाँ ५०, प्रति प्रदर्शनी	२०००) से ५ सालमें	= रु० ५ ,,
(ए)	व्यवस्था-खर्च, अन्य खर्च		रु० ५ ,,
			रु० १२७००००० लाख

(कुल एक करोड़ सत्ताईस लाख मात्र)

(४) जन-सहयोग

राजस्थानके विशाल गोवंशके लिये यह योजना छोटी मानी जायगी, फिर भी प्रारम्भके रूपमें काफी बड़ी है। एक प्रयोग सफल होगा तो आगे और भी अधिक काम बढ़ाया जा सकता है।

चंदा करके इतनी बड़ी रकम प्राप्त करना आसान नहीं है। इसके लिये जनता एवं सरकार दोनोंका सहयोग अपेक्षित है। मंडियोंमें लागबागको व्यवस्थितरूप देनेकी जरूरत है ताकि कुछ आय स्थानीय संस्थाके पास रहे और कुछ केन्द्रमें आवे। गोशालाओंकी लागबागको कानूनी बनाकर उन्हें मजबूत बनाया गया तो गोशालाओंके माध्यमसे इतना बड़ा काम सहज उठाया जा सकता है।

गोदुग्धको भैंस-दूधके बराबर कीमत मिले, इसके लिये आवश्यक है कि गोदुग्धकी महिमाका प्रचार किया जाय। हर घरमें हर संस्थामें गोपालन हो सके तो अच्छा है, नहीं तो, हर संस्था या घरमें दूध तो गायका ही इस्तेमाल किया जाय। भगवान्‌के मन्दिरोंमें घी, दूध दोनों गायके हों। ऐसी भावना बनायी जाय। हर प्रकारसे गायको आगे बढ़ानेकी कोशिश हो। शादी-विवाह आदि प्रसंगोंमें तथा नित्य जीवनमें गोग्रासके रूपमें सहायता देते रहनेकी भावनाको जाग्रत् किया जाय। इस प्रकार जन-सहयोगसे महान् कार्य भी आसानीसे हो सकते हैं।

एक परोपकारिणी मछली

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

'कल्याण'के जून १९६७ के अङ्कमें डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्रका एक लेख छपा है, जिसमें दया, कर्तव्यशीलता आदि गुणोंवाले कुछ जानवरोंका वृत्तान्त दिया गया है। उसे देखकर मैं नीचे एक परोपकारिणी मछलीका वृत्तान्त लिखता हूँ जो कि १२–६–१९५५के 'नवभारत टाइम्स'में प्रकाशित हुआ था और वहाँसे उद्धृत कर मैंने १–७–५५ के 'अहिंसा' अङ्कमें छपवाया था—

न्यूजीलैंड द्वीपके पास कुक जलडमरूके मध्यमें ३–४ मील लम्बी एक ऐसी जगह है जो छिपी हुई, टेढ़ी-मेढ़ी चट्टानों आदिके कारण जहाजोंके लिये बड़ी खतरनाक है। उस जलडमरूमें डालफीन जातिकी एक मछली थी जो करीब १० फुट लम्बी और ३ फुट चौड़ी थी। उस मछलीका नाम जहाजियोंने पेलोरस जैक रख दिया था। जितने भी जहाज उस जलडमरू मध्यमें उस खतरनाक जगहसे होकर गुजरते, उन सबको वह मछली रास्ता बताती थी। जब कोई जहाज उस जगह आता तो वह मछली उस जहाजसे थोड़ी दूर आगे-आगे डूबती-तैरती हुई चलती और जहाज उसके पीछे-पीछे चलता। खतरेकी जगह पार करनेपर वह मछली मानो 'अलविदा (अब मैं जाती हूँ)' यह बतानेके लिये एक बार उछलती और फिर गहरी छलाँग मारकर पानीमें अन्तर्हित हो जाती। इस तरह वह सब जहाजोंको सुरक्षित पहुँचा देती थी। इस प्रकार वह वर्षों सेवा करती रही। यह वह किसी लोभसे नहीं करती थी, जहाजवाले उसके लिये कोई चीज समुद्रमें नहीं डालते थे।

एक बार रोटूरा नामक जहाजको वह मछली रास्ता दिखा रही थी तो उस जहाजके किसी अजनबी व्यक्तिने उस मछलीपर अचानक गोली दाग दी। गोली लगते ही वह मछली उछली और डुबकी लगाकर गायब हो गयी और फिर करीब सालभर तक नहीं दिखायी दी, इस अर्सेमें कई जहाज़ उस रास्तेमें दुर्घटनाग्रस्त हो गये। जहाजियोंका विश्वास था कि उस मछलीका घाव ठीक हो जानेपर वह फिर परोपकारका अपना काम शुरू करेगी। न्यूजीलैंडकी सरकारने भी सन् १९०३ में कानून जारी किया कि अगर वह मछली दिखायी दे तो उसे कोई नहीं मारे। इस कानूनकी घोषणा होनेपर वह मछली फिर दिखायी दी और उसने पहलेका-सा सेवा-कार्य फिरसे शुरू कर दिया एवं उसे वर्षों करती रही। किंतु आश्चर्य यह है कि रोटूरा जहाजको देखते ही वह डुबकी लगाकर भाग जाती।

जहाजीगण उस मछलीका देवताके समान आदर करते थे। जब उस मछलीकी मृत्यु हुई और इसका पता लगा तो न्यूजीलैंडमें एक दरगाहपर उसकी एक प्रस्तर-मूर्ति स्थापित की गयी जो अभी भी मौजूद है।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे स्पष्ट है कि मछलियों आदिमें भी बुद्धि, समझ और मानवोंकी-जैसी भावनाएँ होती हैं। केवल यही नहीं अपितु परोपकारितादि सद्गुण उनमें असाधारण मात्रामें—साधारण मनुष्योंसे अधिक मात्रामें भी सम्भव है। अतः वे आदरके नहीं तो प्रेम, सहानुभूति और दयाके पात्र तो हैं ही। शास्त्रोंमें कितना सुन्दर कथन है कि सभी प्राणियोंमें परमात्मा है। अतः हम उन सभीका हृदयसे आदर तथा हित करें और सबके साथ विनयभावसे बरतें।

सरकार सबसे बड़ा कसाई बनने जा रही है

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी जैन, निशाकर, उपमन्त्री 'हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति')

[बड़े ही दुःखकी बात है कि हमारे यहाँ जगह-जगह बड़े-बड़े वैज्ञानिक कसाईखाने—(जिनमें लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होगी) खोलनेकी योजना बनायी जा रही है। हमारे सम्मान्य स्वर्गीय श्रीलालबहादुरजी शास्त्रीने गोरखपुरमें हमसे कहा था कि कसाईखानोंकी योजना बंद करनेका पूरा प्रयत्न किया जायगा और उन्होंने आशा प्रकट की थी कि वे इस प्रयत्नमें निश्चित रूपसे सफल होंगे। साथ ही उन्होंने भारतमें गोवध सर्वथा बंद करा देनेका भी आश्वासन दिया था। विधाताका विधान—देशके दुर्भाग्यसे उनका असामयिक देहावसान हो गया और भारतीय धर्म तथा संस्कृतिकी विघातक ये दोनों ही समस्याएँ ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयीं !

लाखों-लाखों गायों-बैलों तथा अन्यान्य निरीह पशुओंकी (हिंसामय मुर्गी-उद्योग, मछली-उद्योग आदिके साथ ही) हत्याकी यह घोर पापमयी राक्षसी योजना बनाकर हमारी सरकार जो अपनेको सबसे बड़ा कसाई सिद्ध करने जा रही है, यह हमारा और देशका बड़ा ही दुर्भाग्य है। भगवान्से विनीत प्रार्थना है कि हमारी सरकारके कर्णधारोंको सुबुद्धि प्रदान करें जिससे वे घोर पापाग्निसे बच सकें।

व्रजभूमिके हजरतपुर स्थानमें कसाईखानेकी योजनाको देशमें जगह-जगह विरोध होनेपर भी कार्यान्वित करनेका काम चल रहा है। इधर समाचार मिला है कि रोहतकरोडपर एक बड़ा कसाईखाना खोला जाना निश्चित हुआ है। कुछ वर्षों पहले वहाँ कसाईखाना खोला जा रहा था, पर परम गो-भक्त स्वर्गीय लाला हरदेवसहायजी-की प्रेरणासे वहाँकी जनताके प्रबल विरोधके कारण वह विचार छोड़ दिया गया था। अब यदि फिर वहाँ कसाईखाना खोला जा रहा है तो स्थानीय निरामिषभोजी सारी जनताको चेतना चाहिये और ऐसा प्रबल विरोध करना चाहिये जिससे यह विचार सर्वथा छोड़ दिया जाय। हमारे पास उपर्युक्त हजरतपुर-कसाईखानेके बाबत एक पत्र प्रकाशनार्थ आया है, उसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है—**सम्पादक**]

हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद करानेके लिये देशकी जनतासे अपील

हमें बड़े खेदके साथ लिखना पड़ता है कि केन्द्रिय सरकारकी हठधर्मी अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है। वह भगवान् श्रीकृष्णकी पवित्र व्रजभूमिमें हजरतपुर-कट्टीखाना खोलकर जबरदस्ती व्रजभूमिकी शाकाहारी जनतापर यह कलंक थोपना चाहती है। जनताके तीव्र विरोध करनेपर भी सरकारने अभी भी इस योजनाको रद्द नहीं किया है। हमने सरकारसे सभी प्रकारके शान्ति-पूर्ण, वैधानिक विरोध किये; किंतु हमारी शान्तिप्रिय अहिंसक सरकार, जो कि अपनेको गाँधीभक्त सरकार कहलानेका दावा करती है और बात-बातमें सत्य-अहिंसा-की दुहाई देते हुए नहीं थकती, जिसके कर्णधार धर्मनिरपेक्षताका ढिंढोरा पीटते नहीं थकते, इस धर्म-निरपेक्षताकी आड़में ग्राम हजरतपुर, तहसील ऐत्मादपुर, जिला आगरामें एशियाका विशाल कट्टीखाना खोलकर पवित्र व्रजभूमिमें दूध-घीके स्थानपर खूनकी नदियाँ बहा देना चाहते हैं। जनताको यह स्मरण ही होगा कि इसी व्रजभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने महापापी कंसका वध करके व्रजभूमिमें धर्मराज्यकी स्थापना की थी। किंतु हमारी वर्तमान सरकार हजरतपुरमें कट्टीखाना खोलकर धर्मराज्यको पापराज्यमें डुबो देना चाहती है। यह बड़े ही दुर्भाग्य और दुःखका विषय है।

मैं व्रजभूमिके कलंक हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद

करानेके लिये भारत माँके लालोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति, ऐत्मादपुरको भी गोरक्षा-आन्दोलनकी तरह तन-मन-धनसे सहयोग करके व्रजभूमिकी इस पापसे रक्षा करें। हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद करनेके लिये ऐत्मादपुर तहसीलकी जनताने निम्नलिखित कार्य किये हैं—

१ हस्ताक्षर आन्दोलन करके एक लाख सत्तर हजार हस्ताक्षर कराकर भारतीय संसद्में इस प्रश्नको रक्खा।

२—जहाँपर हजरतपुर-कट्टीखाना बनाया जा रहा है, वहाँपर सरकारने जबरदस्ती हजरतपुर ग्रामके १७ (सत्रह) व्यक्तियोंकी जमीनपर नाजायज कब्जा कर लिया था। उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्टमें रिट दायर की, जिसमें जनताकी विजय हुई, किंतु सरकारने अदालतके कानूनकी अवहेलना कर हजरतपुर-कट्टीखानेका निर्माण-कार्य जारी रक्खा।

३—कई बार कलक्ट्री तहसील आगराके सामने जिलाधीशके समक्ष हजारों व्यक्तियोंने प्रदर्शन किया।

४—समय-समयपर जुलूस निकले। जगह-जगहपर सभाएँ हुईं। इनमें मुख्यतः निम्नलिखित जगहकी रिपोर्टें आयी हैं, जैसे आगरा, फिरोजाबाद, गाँधीग्राम, ध्रांगध्रा, जूनागढ़, राजकोट, बागोड़िया, बड़ोदा आदि हैं।

५—हजरतपुर-कट्टीखानेका विरोध जाननेके लिये राज्यसभासे 'एक जाँच-कमीशन आया था, जिसके समक्ष एक लाख व्यक्तियोंने प्रदर्शन भी किया था।

६—दिल्लीमें गाँधी-समाधिपर ३० सितम्बर सन् १९६६ से २ अक्टूबरतक हजरतपुर-कट्टीखानेकी विरोध-समिति ऐत्मादपुरसे गये सत्याग्रहियोंने अनशन एवं आन्दोलन किया था, किंतु हमें बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ रहा है कि हजरतपुर-कट्टीखानेका विरोध करनेमें श्रीप्यारेलाल सक्सेना शरीर दे गये। उन्होंने गाँधी-समाधि राजघाट दिल्लीमें २ अक्टूबर सन् १९६६में ५८ घंटेका उपवास किया था। जल भी ग्रहण नहीं किया था, स्मरण रहे कि हजरतपुर-कट्टीखानेके विरोधमें यह द्वितीय बलिदान था। इससे पहले पण्डित श्रीरामजी प्रथम बलिदानी हो चुके थे। मुझे इस बातकी अत्यन्त खुशी है कि व्रजभूमिकी जनताने अति संयमसे काम लिया है। उसने राष्ट्रीय तोड़-फोड़की कोई कोशिश नहीं की है। किंतु मुझे दुःख इस बातका भी है कि हमारी सरकारने इसे जनताकी कमजोरी समझकर अपने गलत उसूलको जबरदस्ती लादनेकी कोशिश की है। जिसका परिणाम यह हुआ कि जनताके हृदयमें सरकारके प्रति विद्रोहकी अग्नि धधक रही है। जिसका जीता-जागता प्रमाण है, हजरतपुर-कट्टीखाने एवं गोहत्याको बंद करानेके हेतु तथा अन्न एवं दुग्ध-उत्पादन आदि माँगोंको लेकर श्रीचौधरी चरनसिंह, नगला बूढ़ी, दयालबाग, आगराने दिनाङ्क २-१०-६७ को गाँधी-समाधि राजघाट दिल्लीमें अनशन करनेकी घोषणा कर दी है, जिससे स्थानीय जनतामें एक नयी क्रान्ति जन्म ले रही है।

हमारी सरकार २० वर्षोंमें देशका सारा अन्न और घी तो खा गयी। अब उसकी पूर्तिके लिये जानवर खानेका प्रयास कर रही है। इसके बाद हो सकता है कि मनुष्योंको भी खानेकी तरकीब सोची जाय!

अब मैं भारतके समस्त नर-नारियोंसे इस बूचड़-खानेको बंद करानेके लिये अपनी माँके दूधकी शपथ दिलाता हूँ कि वे संगठित होकर शक्तिभर प्रबल आन्दोलन करें और अपने-अपने यहाँके स्थानीय एम० पी०, एम० एल० ए०को बाध्य करें कि वे केन्द्रीय सरकारकी इस नीतिका विरोध भारतीय संसद्में ऐसे प्रभावशाली रूपसे करें कि जिससे सरकारको यह घोर पापका विचार सर्वथा छोड़ देना पड़े।

इस सम्बन्धमें जो भी भाई-बहन सम्पर्क स्थापित करना चाहें, वे हमसे इस पतेपर पत्रव्यवहार कर सकते हैं। पता निम्नलिखित है—

उपमन्त्री, हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति, ऐत्मादपुर (आगरा)

अपनी ही लगायी आग

(लेखक—डा० श्रीशिवदत्तजी शर्मा 'शिव')

आज मैं बहुत परीशान था, क्यों ?

एक विचित्र-सी घटना घटी मेरे साथ। सुबह मेरी नींद खुली एक स्वप्नसे। ग्यारह बज रहे थे दिनके। मैं आँख खुलते ही बैठा हो गया। साँस तेजीसे चल रही थी। शरीर पसीनेसे भीग रहा था। शायद जगनेसे पहले एक चीख भी मेरे मुँहसे निकली थी। अपने आपपर काबू पाते हुए मैंने स्मृतिपर जोर डाला और स्वप्नकी बात याद करने लगा। इतना भयंकर स्वप्न था कि यदि रात होती तो मैं उसे फिरसे याद करनेका साहस भी नहीं कर सकता था। अब भी तो डर लग रहा था मुझे। इसलिये साहस बाँधनेको रातकी बात सोचने लगा—

थोड़ा-थोड़ा ख्याल आ रहा है—रातको एक निमन्त्रणपर गया था। निमन्त्रण तो एक बहाना था। हम चार-पाँच पुरुष थे और उतनी ही स्त्रियाँ भी। सभीने क्षमता भर खूब शराब पी, खाना खाया और…………

और सभीने होश खो दिये। उस उन्मत्ततामें कितना समय बीत गया है, किसीने नहीं सोचा। किंतु जब शक्तिने साथ नहीं दिया तो घर लौट आया। पता नहीं, कब नींद आ गयी या बेहोश रहा यह भी नहीं मालूम।

लेकिन स्वप्न ?—विचित्र-सा स्थान था। सूखे और काले पेड़, कहीं-कहीं उजाला-सा और मैं अकेला। चलचित्रकी तरह हलका लाल रंगका प्रकाश फैलता है। देखता हूँ—अनेक चेहरे कोई शराबका साथी, कोई सिनेमाका और कोई…………। हँसते हुए, खिलखिलाते हुए। मैं पूछता हूँ—'मैं कहाँ हूँ ? हम सब कहाँ हैं ? यह कौन जगह है ?' सब मौन हो जाते हैं। मैं फिर पूछता हूँ—'सब चुप क्यों हो गये ?'

'मुर्दे बोला नहीं करते। शी………ई………ई चुप रहो। यह मरघट है। हम सभी मुर्दे हैं और तुम भी क्या बकते हो ?' 'मैं तो जिंदा हूँ। हम सभी जिंदा हैं।'

धीरे-धीरे उजाला बढ़ने लगता है। चारों ओर देखता हूँ मुझे आस-पास खड़ी सूरतें डरावनी लगने लगती हैं। सभी प्रेत-जैसे दिखायी देने लगते हैं। मैं पीछे हटता हूँ। सभीके हाथ उठते हैं। ऐसे बढ़ते हैं—जैसे मेरा गला दबा देंगे ! मैं और पीछे हटता हूँ। एक जोरकी खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है। घूमकर देखता हूँ—वही प्रेत-जैसी आकृतियाँ हाथ आगे किये ! कुछ सोच नहीं पाता; हँसी तेज होती जाती है। चीखना चाहता हूँ, किंतु आवाज नहीं निकलती। मुड़ता हूँ और एक ओर दौड़ जाता हूँ। सभी पीछे दौड़ते आ रहे हैं। प्रकाश बढ़ता जा रहा है, गरमी बढ़ती जाती है। पीछेकी चीखें और तेज होती जा रही हैं। अब और दौड़ा नहीं जाता; लड़खड़ाकर गिर पड़ता हूँ। कुछ दिखायी नहीं देता। आवाज सुनायी देती है, आँखें खोलता हूँ। चीखें बंद हो जाती हैं। देखता हूँ—बड़े-बड़े नाखूनवाले सैकड़ों हाथ ! वे बड़ी निर्ममतासे दबोच लेते हैं मुझे ! मैं छटपटाता हूँ। कोई कहता है 'इसे आगमें फेंक दो।'

चित्र बदलता है। ऊँची लपटें उठ रही हैं, बीचोंके बीच जलती आग ! मुझे उठाकर आगमें फेंक

दिया जाता है। सभी गायब हो जाते हैं। मैं जलने लगता हूँ और अनायास मुँहसे निकलता है—'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो।'

जैसे चमत्कार होता है। आगकी गरमी शान्त होने लगती है। दूरसे आती हुई एक आकृति सफेद वस्त्रोंमें धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है, दोनों हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें उठाये। मैं पहचाननेकी कोशिश करता हूँ, किंतु पहचान नहीं पाता। पास आकर आकृति खड़ी हो जाती है, हाथ वैसे ही उठे हैं। गम्भीर स्वर सुनायी देता है। 'पहचाना मुझे?' 'कुछ याद नहीं आता मुझे, पहचाननेकी कोशिश करता हूँ।' 'तुम मुझे उस पहाड़ीपर बने तालाबपर मिले थे शहरसे उत्तरमें, जहाँ ऊँचेसे गिरते झरनेका पानी उसमें इकट्ठा होता है, आजसे दो साल पहले दिवालीके दिन—याद करो। उस समय तुम्हारे चेहरेपर एक चमक थी। हृदयमें आस्था थी। आज मैं फिर आया हूँ। इस आगसे बचना चाहते हो तो अपने-आपको पहचानो। जो कुछ तुमने देखा है तुम्हारे अपने कर्मोंका फल है। तुम्हारा भविष्य है। यह आग, जिसमें तुम जल रहे हो, तुम्हारी अपनी लगायी हुई है। रास्ता खोजो। वास्तविकताको समझो। मैं दूर नहीं हूँ, सदा ही साथ हूँ।'

मुझे याद आ रहा था, धीरे-धीरे याद आ रहा था—मैंने कहाँ देखा था इन्हें।

उत्तरी पहाड़ीपर एक छोटा तालाब है, जिसमें चट्टानसे निकले एक झरनेका पानी निरन्तर गिरता है। चारों ओर जंगली झाड़ियाँ हैं; उनपर लदी वनलताएँ उस स्थानकी शोभा बढ़ाती हैं। बहुत अच्छा स्थान है। कुछ देव-मन्दिर भी हैं और कुछ पत्थरोंकी ही बनी कुटी हैं, जहाँ कभी-कभी कोई साधु आश्रय लेते हैं। उन दिनों मैं रोज ही वहाँ घूमने जाया करता था। वहीं मिले थे ये मुझे और बड़े ही सौम्य एवं वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें कहा था—'बेटे! जीवनसे कुछ पाना चाहते हो तो मायासे दूर रहो।'

और मेरे अविकसित मस्तिष्कने बातको परिहासमें उड़ा दिया था।

'वाह! क्या-क्या लम्बी हाँकते हैं ये फक्कड़ भी। भले ही इतना भी नहीं जानते होंगे कि माया क्या है। खुद तो साधनोंके अभावके कारण सांसारिक सुख भोग नहीं सकते, लोगोंसे कहते हैं—संसारसे दूर रहो, संसार माया है। हुँह····ढोंगी कहींके····।

नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड़ मुड़ाय भए संन्यासी॥

खुद तो पराये माल खा-खाकर चिकने पड़े रहते हैं। दूसरोंसे कहते हैं—आत्महत्या कर लो। संसारसे दूर रहनेका अर्थ आत्महत्या नहीं तो और क्या है?'

उस दिनके बाद साधु और शास्त्रोंसे जैसे चिढ़ हो गयी मुझे। मैंने उधर जाना ही बंद कर दिया। बस, कभी-कभी क्लब चला जाता था या उतने समय कोई उपन्यास ही पढ़ता। ईश्वरके प्रति हृदयस्थित आस्थाका स्थान परिहासने ले लिया था। भजनका स्थान ले लिया इन्द्रिय-सुखकी खोजने। नये सिद्धान्त बन गये—'खाओ, पीओ और जीओ। जबतक जीवन है चैनसे गुजारो।'

इसके लिये प्रमुख सहायक धन समझमें आया, जिसे पानेके लिये झूठ बोलना—छल करना प्रारम्भ किया, वह भी अपने ही घरसे। लेकिन वह झूठ अधिक दिन नहीं चला। बस, फिर सभीसे झूठ बोलना शुरू कर दिया। फिर भी जो मिलता था, पर्याप्त न था। जिसके कारण जूआ, सट्टा और चोरीका सहारा लिया। किंतु ये सब तो धन प्राप्त करनेके साधन थे और धन साधन था सुख पानेका। अतः सुखकी तलाशमें बढ़ा तो बढ़ता ही गया; सिगरेट, सिनेमा, शराब और वेश्या भी सीमा नहीं बन सकी। हमेशा आजका सुख

कल दुःख बन जाता और कल फिर नये सुखकी तलाश शुरू हो जाती। मैं दिनों-दिन गिरता ही गया। अन्ततः 'नष्टस्य कान्या गतिः।' गत कल रात्रिकी स्थिति तो यदि पशु भी देखते तो उन्हें भी आँखें बंद करनी पड़तीं। उस दिनसे कलतकका जीवन एक चल-चित्रकी तरह घूम गया। अपना घोर पतन देखकर मेरी चीख निकल गयी। मैं अपने-आपसे घबरा गया और बस मेरी आँख खुल गयी।

महात्माजीके शब्द फिर बार-बार मस्तिष्कमें टकरा रहे थे 'जो तुमने अभी-अभी देखा है, तुम्हारा भविष्य है। जिस आगमें तुम जल रहे हो—तुम्हारी ही लगायी हुई है। तुम्हारे अपने कामोंका फल है। रास्ता खोजो, वास्तविकताको समझो। मैं दूर नहीं हूँ, सदा साथ हूँ।' जैसे हथौड़ेकी चोट पड़ रही हो कहीं मस्तिष्कमें।

'जीवनमें कुछ पाना चाहते हो, तो मायासे दूर रहो। अपने आपको पहचानो।'

जैसे सम्पूर्ण मस्तिष्क झनझना रहा था—मैं क्या हूँ? वास्तविकता क्या है? रास्ता क्या है? और मांया क्या है?

सदा साथ रहनेवाला कौन है? आत्मा या परमात्मा। किंतु परमात्माको तो मैं बिलकुल भूल चुका हूँ। मुझे फिर वहीं लौटना पड़ेगा जहाँ बचपनमें था। हृदयमें आस्था थी, विश्वास था ईश्वरके प्रति।

हाँ, यह सब छोड़ना ही पड़ेगा। अन्यथा मानवके लिये यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा!

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

बड़े ही हर्षकी बात है कि गतवर्षकी प्रार्थनाके अनुसार 'कल्याण'के बहुत-से पाठक-पाठिकाओंने तथा भगवन्नामप्रेमी सज्जनों तथा माताओंने कृपापूर्वक स्वयं भगवन्नामका जप किया तथा दूसरोंको प्रेरणा करके करवाया। दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की गयी थी; परंतु नामप्रेमियोंके उत्साहसे—

३३,६२,३३,७०० (तैंतीस करोड़, बासठ लाख, तैंतीस हजार, सात सौ) मन्त्रोंका जप हो गया। जिनकी नाम-संख्या होती है—

५,३७,९७,३९,२०० (पाँच अरब, सैंतीस करोड़, सत्तानबे लाख, उन्तालीस हजार, दो सौ)

सब मिलाकर १००९ स्थानोंसे नाम-जप होनेकी सूचना मिली है। स्थानोंके नाम आगामी अङ्कमें प्रकाशित होंगे।

हमलोग बड़े हर्षके साथ नाम-जप करने-करानेवालेके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

व्यवस्थापक—**'नाम-जप-विभाग',**

गीताप्रेस, गोरखपुर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सच्ची सहानुभूति और करनीका फल

शिवराम गरीब था। पैंसठ रुपये मासिक वेतन पाता था। उसकी कन्या बाईस वर्षकी हो गयी, अतः उसके विवाहकी बड़ी चिन्ता हो गयी। उसने नौकरीके अतिरिक्त रातको तथा सुबह एक व्यापारीके यहाँ तीन वर्षतक प्रतिदिन पाँच घंटे हिसाबी काम करके पंद्रह सौ रुपये इकट्ठे किये। बड़ी दौड़-धूपके बाद एक संस्कारी शिक्षित लड़केके साथ लड़कीकी सगाई की। विवाह एक महीने बाद करना निश्चित हुआ। परंतु विधाताका विधान दूसरा ही था—इसीसे शिवरामको पर-दुःखनिवारणका आदर्श प्रकट करनेका अवसर मिल गया।

शिवरामके पड़ोसमें ही धनीसिंह नामक एक अच्छे घरानेके सज्जन रहते थे। इनपर झूठा आरोप लगाया गया। वहींके एक बदमाश धनीकी धनीसिंहकी पत्नीपर बुरी नीयत हो गयी। धनीसिंह गरीब था। पर था बलवान् और बहादुर। अतएव उस धनी दुराचारीने पुलिस तथा कुछ दूसरे लोगोंको मिलाकर धनीसिंहपर झूठा मुकदमा चलवा दिया। धनीसिंहको जेल भेजकर उसकी गैरहाजिरीमें उसकी पत्नीपर कब्जा करनेकी उसकी नीच वासना थी। कुछ पैसे खर्च करके धनीसिंहपर बारह सौ रुपयेकी डिग्री करवा दी और एक दूसरे फौजदारी मुकदमेमें तीन सौका जुर्माना न दे सके तो छः महीनेकी कैदकी सजाका हुक्म हो गया। रुपये वसूल करनेके लिये वारंट निकला। रुपये वसूल न हों तो धनीसिंहको जेल भेज दिया जाय। रुपये वसूल होनेकी तो सम्भावना थी ही नहीं; कारण कि धनीसिंह इतना गरीब था कि घरमें दो दिनका अनाज भी नहीं था। इस प्रकार धनीसिंहको जेल भिजवानेकी सारी व्यवस्था हो गयी।

धनीसिंहकी सुन्दरी पत्नी बड़ी ही सुशील थी। इस भयानक षड्यन्त्र और कोर्टके फैसलेकी बात सुनकर वह तो हक्कीबक्की रह गयी। पर वह साहस करके अपनी पड़ोसिन शिवरामकी पत्नी चन्दनीके पास गयी और उसको सारा हाल सुनाकर उससे सलाह माँगी।

अश्रुधारा बहाती धनीसिंहकी पत्नीकी सारी बातें सुनते ही चन्दनीका हृदय पिघल गया। उसने अपने पतिके पास जाकर धनीसिंहकी पत्नीकी कही हुई सारी बातें सुनायीं और कहा—

'अपनी लड़कीके विवाहमें तो अभी एक महीना बाकी है। भगवान्की कृपा होगी तो इस बीच कोई दूसरी व्यवस्था हो जायगी। नहीं तो, साल-छः महीने बाद सही। पर इनका काम तो आज ही करना है। विवाहके लिये आपने जो पंद्रह सौ रुपये इकट्ठे किये हैं, वे देकर इनको इस विपत्तिसे छुड़ा लेना है।'

शिवरामके हृदयमें भी सहानुभूतिकी बाढ़ आ गयी। उसने भी चन्दनीसे कहा—'तेरा विचार बहुत सुन्दर है। यह काम आज ही करना है। इस बहिनको आश्वासन देकर भेज दे। मैं स्वयं धनीसिंहके पास जाकर रुपये दे आता हूँ।' पतिकी यह बात सुनकर चन्दनीको बहुत ही हर्ष हुआ। अपनी पुत्रीके विवाहकी बात भूलकर धनीसिंहको विपत्तिसे छूटा हुआ देखनेकी पवित्र इच्छासे बड़ी नम्रताके साथ तथा आदरपूर्वक चन्दनीने धनीसिंहकी पत्नीको आश्वासन देकर विदा किया।

कुछ ही देर बाद पंद्रह सौ रुपये लेकर शिवराम धनीसिंहके पास पहुँचा और बड़ी शान्तिके साथ उसे समझाकर रुपये दे दिये। रुपये लेनेमें उसे संकोच तो हुआ। पर उसके हृदयमें जो आनन्द छाया, वह अवर्णनीय है।

यों पंद्रह सौ रुपये भर दिये गये। बदमाशकी बुरी नीयत सर्वथा निराशामें परिणत हो गयी।

'भगवान्का न्याय देरसे फल देता है'—ऐसा कहा जाता है, पर यहाँ तो फल भी हाथोंहाथ ही मिल गया। एक शेयर दलालके मारफत शिवरामके कुछ शेयर खरीदे हुए थे और महीनेके अंदर ही उनमें दो हजार रुपये मिल गये। ईश्वर-कृपासे कन्याका विवाह निश्चित तिथिपर ही सानन्द सम्पन्न हो गया और उस बदमाश धनीका मोटर-दुर्घटनासे दाहिना पैर टूट गया। 'जैसी करनी वैसा फल'। 'अखण्ड आनन्द'

—साधुशरण गुप्त

(२)

प्रभुकी असीम कृपा-प्रार्थनाका फल

सन् १९४२, २२ नवम्बरकी बात है जब कि रातमें लगभग दस बजे मैं सोने जा रहा था। मनसे अत्यन्त करुणापूर्ण प्रार्थना निकली—'भगवन् ! कई वर्षोंसे परिश्रम

उन्होंने रेडिओ देनेका प्रस्ताव किया जो उनके बगलमें लटक रहा था। उन्होंने उसे भी लेनेसे इन्कार किया। तब वे उपकार मानते हुए चल दिये। फिर घटनाके पाँचवें दिन स्वयं कामता स्कूलमें जीपसे आये और बच्चोंके सामने लगभग पाँच किलोसे अधिक मिठाइयोंका बड़ा-सा थैला रख दिया। मास्टरजीने मिठाई न लेनेका बहुत प्रयत्न किया, पर वे माने नहीं और छोड़कर चले गये।

—सीतारामसिंह ठाकुर

(५)

दो लाभकारक दवाइयोंके नुस्खे

एक्ज़िमाकी एक और दवा

[एक्ज़िमाकी दवाका एक नुस्खा गताङ्कमें छपा है। यहाँ दूसरा एक दिया जा रहा है। एक्ज़िमाके रोगी लाभ उठावें। यह निवेदन है—सम्पादक]

मैं सात सालका था तब मुझे भयानक 'एक्ज़िमा' हो गया। पिताजीने बताया है कि मेरे पैरोंका चमड़ा हाथीके चमड़ेकी तरह हो गया था और घावसे बराबर पानी बहता रहता था। मेरी इस पीड़ासे मेरे माता-पिता बड़े दुखी थे। मेरे पिताजी एक बार विन्ध्याचलकी ओर गये थे। उन्हें एक महात्मा मिले। पिताजीने मेरी पीड़ाका हाल उनको सुनाया। इसपर महात्माने दया करके नीचे लिखा नुस्खा सेवन-विधिसहित बतलाया। मुझे इस दवासे इतना लाभ हुआ कि फिर आजतक एक्ज़िमा नहीं हुआ और पैरोंमें उसके निशान तो मेरे होशसे ही नहीं हैं। और भी बहुत लोगोंको इससे लाभ हुआ है। एक्ज़िमासे परीशान लोग इससे लाभ उठा सकें तो महात्माके कथनानुसार यह एक सत्कर्म ही होगा।

दवा बनानेकी विधि और वस्तुएँ

रसकपूर चार आना भर		
सफेद खैर एक भर		
मुर्दाशंख एक भर	}	१
छोटी इलायचीके दाने एक भर		
माजूफल पाँच दाने		
चिरौंजी कसैली या सुपारी पाँच दाने		
कइयाँ या करंज पाँच दाने	}	२
कुचिला पाँच दाने		
सोरही कौड़ी पाँच दाने		

दूसरे समूहकी पाँचों चीजोंको एक छोटे मिट्टीके पात्रमें रखकर उसका मुँह मिट्टीके ही ढक्कनसे बंद कर दें और आटेसे उसे साट दें। तदनन्तर गोइठों (उपलों) की भट्ठी बनाकर उसमें रख दें। भीतरकी दवा जलकर राख हो जायगी, तब उसे निकालकर खरल करके पाउडर बना लें।

पहले समूहकी चारों चीजोंको अलगसे कूट तथा खरल करके उनका भी पाउडर बना लें। फिर, दोनों समूहकी दवाओंको कपड़छान करके मिला दें एवं चमेलीके शुद्ध तेलमें मिलाकर मलहम बना लें। बस, दवा तैयार हो गयी।

घावको जलसे या कपड़ेसे पहले साफ कर लें, उसके बाद प्रतिदिन उसपर दवाका लेप करते जायँ। ध्यान रहे कि घावपर पानी नहीं पड़ना चाहिये। ईश्वर-कृपासे दो-चार दिनोंमें ही लाभ मालूम होगा।

—अखिलेश्वरप्रसाद सिन्हा

जगदीशपुर (शाहाबाद) बिहार

शिशु-यकृत रोग-नाशक दवा

(Infantile Lever Cure)

बच्चोंको प्रायः लीवरकी बीमारी हो जाती है और वह बड़ी भयानक होती है। सहजमें अच्छी नहीं होती। यहाँ नीचे मैं एक नुस्खा लिख रहा हूँ, इससे बहुत-से बच्चोंकी जान बच चुकी है। दवा यह है—

जायफल (बाजारमें पंसारीके यहाँ मिलता है)

टींटकी जड़ (यमुनाके खादरमें बहुत मिलती है)

बड़ी हरें

काला नमक।

जायफलको गायके दूधमें तीन-चार बार उबालकर प्रयोगमें लावें।

सेवन-विधि—

इस जायफलको तथा तीनों और चीजोंको किसी साफ पत्थरपर रगड़कर एक चम्मच पानीमें सुबह तथा शामको ७। ८ दिनों तक दें। प्रभु-कृपासे लाभ होगा। यह अचूक रामबाण दवा है।

—श्रीदीपचन्द्र अग्रवाल

सिविल लाइन्स, मथुरा

नयी पुस्तक ! *प्रकाशित हो गयी !!*

साधन-सम्पत्ति

(संग्रहकर्ता-लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, **पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य पचीस पैसे,** डाकखर्च अलग।

(प्रस्तुत पुस्तक साधकोंके लिये बड़ी लाभदायक वस्तु है। चतुर लेखकने सचमुच ही साधन-सम्पत्तिका संग्रह करके उसे मालारूपमें तीन भागोंमें विभाजित कर दिया है। प्रत्येक भागमें १०८ मनके हैं। अन्तिम भाग श्रीमद्भगवद्गीताके आधारपर लिखा गया है। आशा है, इसके मननसे साधकोंके साधनकी उन्नति होगी।)

ग्यारह अप्राप्त पुस्तकोंके नये संस्करण

रु. पै.

१—**श्रीतुकाराम-चरित**—[जीवनी और उपदेश]—(लेखक—श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, बी० ए०; अनुवादक—श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे) पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या ५९२, सचित्र, मूल्य अजिल्द १.७५, सजिल्द २.१५

२—**श्रीकृष्ण-माधुरी**—द्वितीय संस्करण, सूरदासजीके पद सरल भावार्थसहित, सुन्दर तिरंगा चित्र, पृष्ठ-संख्या २७६, मूल्य अजिल्द १.२५, सजिल्द १.६५

३—**परम शान्तिका मार्ग**—(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका) तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४१६, चित्र रंगीन ४, सादा २, मूल्य अजिल्द १.००, सजिल्द १.५०

४—**माण्डूक्योपनिषद्**—नवाँ संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य ... १.२५

५—**श्वेताश्वतरोपनिषद्**—छठा संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या २६८, मूल्य ... १.०५

६—**स्वर्ण-पथ**—[आध्यात्मिक जीवनके विकासका पथ-प्रदर्शक] (लेखक—प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०) छठा संस्करण, सुन्दर टाइटल, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य ... .९०

७—**एक महात्माका प्रसाद**—चौथा संस्करण, यह सत्सङ्गी भाइयोंके लिये बड़े कामकी वस्तु है, पृष्ठ-संख्या २९२, मूल्य ... ... .९०

८—**श्रीरामचरितमानस लंकाकाण्ड**—सटीक, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या १३२, मूल्य ... .६०

९—**श्रीरामचरितमानस-उत्तरकाण्ड**—सटीक, तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या १४४, मूल्य ... .६०

१०—**प्रश्नोपनिषद्**—दसवाँ संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य ... .५५

११—**भवरोगकी रामबाण दवा**—(लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) दसवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या १७६, मूल्य .३५

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

रजि० सं० एल्० १७५

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा निवेदन

(१) 'कल्याण'का यह ४१ वें वर्षका दसवाँ अङ्क है। ग्यारहवाँ एवं बारहवाँ अङ्क और निकलनेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४२ वें वर्षका प्रथम अङ्क 'उपासना-अङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें उपासनासम्बन्धी विभिन्न विषयोंपर विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके विचारपूर्ण प्रेरणात्मक सुन्दर लेख रहेंगे। सुन्दर चित्रोंकी व्यवस्था भी की जा रही है। उपासकोंके लिये यह अङ्क अत्यन्त उपादेय होगा।

(२) 'कल्याण' का खर्च बहुत बढ़ा हुआ था ही, इस वर्ष डाकखर्च बहुत बढ़ गया। इसके बाद हालमें कर्मचारियोंके वेतनकी जो [illegible]री विज्ञप्ति निकली है, उसके लागू होनेपर तो इतना खर्च बढ़ जायगा जो गीताप्रेसके सस्ता साहित्य प्र[illegible] करनेके उद्देश्यकी पूर्तिमें एक बड़ा प्रतिबन्धक रूप होगा। अभी तो 'कल्याण' का वार्षिक मूल्य केवल ९.०० रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरके द्वारा तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म इसके साथ भेजा जा रहा है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक अवश्य बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) है।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है।

(७) 'उपासना-अङ्क' के लिये बहुत ही अधिक लेख-सामग्री आ गयी है। अतः अब कोई सज्जन लेख-कविता आदि कृपया न भेजें। इस विवशताके लिये लेखक महानुभावोंसे क्षमा-प्रार्थना है।